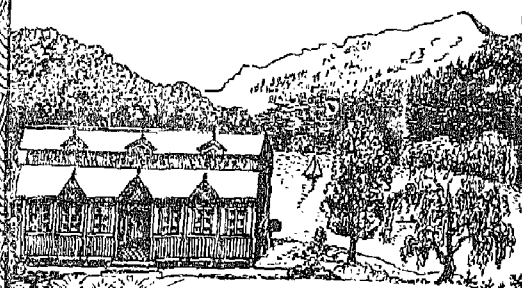

DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no.
Book no.
Reg no.

लम्बे दिन जलती रातें

लेखक की अन्य पुस्तकें

- कली मुसकराई (उपन्यास)
- घर की आन ,,
- अवगुण्ठन (कहानी संग्रह)
- नया मार्ग ,,
- अफ्रीका का आदमी ,,
- कितना ऊँचा कितना नीचा ,,

लम्बे दिन जलती रातें

(कहानी संग्रह)

सत्य प्रकाश संगर

विजय प्रकाशन

भोपाल : अकोला

इस पुस्तक की सभी कहानियों के पात्र
और स्थान कल्पित हैं।

लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

Durga Sah Municipal Library,
NAINITAL.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाईब्रेरी
नैनीताल
Class No. 891.36
Book No. S 87 L
Received on May 1956

मूल्य : दो रुपये

मुख्य वितरक
राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली, बम्बई, इलाहाबाद

प्रकाशक :
विजय प्रकाशन,
भोपाल — अकोला

3372

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली

जीजी के नाम

विषय सूची

इंटरव्यू	६
दूसरा विवाह	२३
प्रतिज्ञा	३६
बाबूलाल	५५
लम्बे दिन जलती रातें	६७
तबादला	६३
किरन	१०७
परिवर्तन	११५

इंटरव्यू

इंटरव्यू

"नमस्ते, मुन्शीजी !" मैंने कमरे में प्रविष्ट होकर कुरसी पर बैठे हुए साहब को सम्बोधित करते हुए कहा ।

"नमस्ते !"

"मैं इंटरव्यू के लिए आया हूँ ।"

"पधारिए," उन्होंने मेरी ओर निगाह उठाए बिना कहा ।

वह कुछ लिख रहे थे । उनके सामने मेज पर फाइलों के ढेर पड़े थे और फर्श पर भी । दीवारों के साथ बड़ी-बड़ी अलमारियाँ थीं जिनमें ए० आई० आर० की मोटी-मोटी जिल्दें रखी थीं । एक एडवोकेट के कमरे में और हो ही क्या सकता था ! फिर रायबहादुर दुर्गादास तो नगर के प्रमुख और उच्च कोटि के वकीलों में से थे ।

कुरसी पर बैठते हुए मैंने मुन्शीजी के चेहरे पर एक उड़ती हुई निगाह दौड़ाई । यदि मेरे साथ मेरा कोई मित्र होता तो हमारे लिए हँसी को वश में रखना असम्भव हो जाता । दुबले-पतले शरीर पर एक छोटा-सा चेहरा था जिस पर सबसे अधिक प्रत्यक्ष उनकी पली हुई मूँछें थीं । उस्तरे से सफाचट किये हुए सिर के बीच वालों का सघन गुच्छा ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे चटियल मैदान में एक झाड़ी ।

लिखना बन्द करके मुन्शीजी अपनी कुरसी से उठे और मुझसे कुछ कहे बिना चले गए—रायबहादुर को मेरे आने की खबर करने, मैंने सोचा ।

नगर के सफल और प्रमुख वकील होने के नाते तथा सामाजिक और

3372

शैक्षणिक कार्यों में रुचि लेने के कारण रायबहादुर दुर्गादास कई अन्य स्कूलों तथा कालिजों के अतिरिक्त, रामदास कालिज फॉर गर्ल्स की प्रबन्धकारिणी-समिति के अध्यक्ष थे। उनके बंगले पर ही आज कालिज के लिए इतिहास के प्रोफेसर का चुनाव होना था।

एम० ए० पास करने के कई मास बाद तक सड़कों की धूल फाँकते और दफ्तरों के दरवाज़े खटखटाते मैं तंग आ चुका था। अंग्रेजी पत्रों में निकले विज्ञापनों के उत्तर में आवेदन-पत्र देकर अपनी जो थोड़ी-बहुत पूँजी थी, वह भी समाप्त कर चुका था। किसी भी कालिज में पार्ट-टाइम जगह हासिल करने के लिए अत्यन्त उत्सुक था। रामदास कालिज में कुछ देर पढ़ाने के पश्चात् किसी अच्छे कालिज में स्थान प्राप्त कर सकूँगा, इस की मुझे आशा थी, यद्यपि वी० डी० अग्रवाल और रामस्वरूप भटनागर इस कालिज में कई वर्ष से पढ़ाने के बावजूद इसे छोड़ने को तैयार नहीं थे। वे कालिज में तो केवल सौ पाते, परन्तु प्राइवेट ट्यूशन से चार-चार सौ कमाते थे।

दो दिन पूर्व रामदास कालिज फॉर गर्ल्स के सेक्रेटरी की ओर से इंटरव्यू का पत्र पाकर मैं हर्ष-विह्वल हो उठा था। परन्तु दूसरे ही क्षण मुझ पर उदासी छा गई थी। इंटरव्यू के लिए सूट का क्या होगा? मेरा अपना सूट राजेन्द्र अपने मामा की लड़की के विवाह में शामिल होने के लिए ले गया था। मैं कमीज, पाजामा, धोती या निकर पहनकर इंटरव्यू में नहीं जा सकता था। नया सूट दो दिन में सिल सकता था, लेकिन पैसे नहीं थे।

मित्रों में कोई ऐसा नज़र नहीं आ रहा था जिससे सूट माँग सकूँ। इनमें से अधिकतर वे थे जो फीस दिये बिना खैराती कालिजों में पढ़ते थे। मुझे याद आया कि रोशनलाल ने कहीं बाहर आने-जाने के लिए सूट बनवा रखा है। वास्तव में बनवाया नहीं, बल्कि कबाड़ी की दुकान से खरीदकर उसे रँगवा लिया है। यद्यपि उसका सूट मेरे पूरी तरह फिट नहीं आता था, लेकिन काम चलाने के लिए बुरा नहीं था।

रोशनलाल का सूट और हैट पहनकर और टाई लगाकर मैं बाहर निकला। मोची से जूतों पर पालिश करवाई और राजेन्द्र का फाउंटेनपेन लगाकर मैं वहाँ इंटरव्यू के लिए पहुँच गया। थोड़ी देर बाद कुछ और लोग आ गए। उन्हें देखकर मेरे आनन्द की सीमा न रही। वे सब-के-सब अनाथालय के मालूम होते थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था जैसे वे कालिज में प्रोफेसरी के लिए नहीं, विधवाश्रम के लिए भीख माँगने आए हैं। उनमें से केवल एक व्यक्ति सूट पहने था और वह भी सूती। एक सज्जन बन्द गले का कोट पहने थे, एक खादी के धोती-कुरते में आए थे, और एक कमीज, पाजामा और छोटा कोट पहने हुए थे।

चपरासी ने मेरा नाम पुकारा और मुझे अपने पीछे आने का संकेत किया। लड़कियों के स्कूल का यह चपरासी रायबहादुर के मुन्शी से ज्यादा रोब-दाब वाला व्यक्ति था। इंटरव्यू-रूम के पास पहुँचकर चपरासी ने चिक उठाई। कमरे में प्रवेश करते ही यदि मैं जल्दी से कुरसी का सहारा न लेता तो मेरे गिर पड़ने में कोई सन्देह नहीं था। मेरे बिलकुल सामने अध्यक्ष की कुरसी पर वही सज्जन बैठे थे जिन्हें मैंने मुन्शीजी समझा था। यही थे रायबहादुर दुर्गादास—रामदास कालिज फॉर गर्ल्स की प्रबन्धकारिणी-समिति के अध्यक्ष। मुझे इस प्रकार घबराये हुए देखकर रायबहादुर बोले—

"क्या तबियत ठीक नहीं है ?"

"हाँ, जरा सिर चकरा गया था।"

"अभी से ?" बाईं ओर से एक बारीक-सी आवाज आई।

मैंने गरदन घुमाकर सफेद रेशमी साड़ी पहने एक महिला को देखा। यह थीं कालिज की प्रिंसिपल मिस नारायण।

"आजकल के नवयुवकों को यह सामान्य बीमारी है," दाईं ओर से मेरे कान में आवाज पड़ी।

मैंने देखा बहुत छोटे कद और छोटी मूँछों वाले एक सज्जन कुरसी पर बैठे हैं, जो कह तो मुझसे रहे थे, लेकिन देख रहे थे रायबहादुर की

तरफ। वह नाटे भी थे और भेंगे भी।

मैं इतना घबरा गया कि कुछ क्षण तक यह निर्णय न कर सका कि खड़ा रहूँ या बैठ जाऊँ।

"तशरीफ रखिए," अध्यक्ष महोदय बोले।

"धन्यवाद," अपना हैट मेज पर रख कुरसी पर बैठते हुए मैंने कहा। तब अचानक मुझे कुछ सूझी। एक झटके के साथ मैं अपनी सीट से उठा और रायबहादुर को देखकर सिर हिलाते हुए बोला—

"नमस्ते !"

"नमस्ते !" वह मुसकराकर बोले।

फिर मैंने प्रिंसिपल और सैक्रेटरी को भी उसी प्रकार नमस्ते की और अपनी जगह पर बैठ गया। इन तीनों ने एक-दूसरे की ओर देखा जैसे कह रहे हों—'यह भी खूब रही !'

"मिस्टर प्रकाश !" रायबहादुर मुझे सम्बोधित करके बोले, "आपने एम० ए० कब पास किया ?"

"इसी वर्ष।"

"किस विषय में ?" नाटे व्यक्ति ने पूछा।

"हिस्ट्री में।"

"हिस्ट्री ही में क्यों ?" प्रिंसिपल बोलीं।

"अच्छी लगती है।"

"कौन ?"

"हिस्ट्री।"

"और पॉलिटिक्स ?"

"उससे घबराता हूँ।"

"क्यों ?"

"शराफत का यही तक़ाजा है," मैंने उत्तर दिया।

"मेरा मतलब है। पॉलिटिकल साइन्स," मिस नारायण अपने प्रश्न को स्पष्ट करते हुए बोलीं। "इतिहास और राजनीति-शास्त्र का चोली-

दामन का साथ है। आजकल सब लोग डबल एम० ए० करते हैं।"

"हिम्मत वाले होते हैं," मैंने कहा।

"पुरुष होकर आपमें हिम्मत नहीं ?" कुमारीजी व्यंग्यपूर्वक कहने लगीं। "मैं स्त्री हूँ, चार विषयों में एम० ए० हूँ; बी० टी० और एल-एल० बी० भी।"

"और आपमें हिम्मत नहीं !" नाटा व्यक्ति गरदन हिलाकर कहने लगा।

"साहब, एक से अधिक एम० ए० करने के मैं पक्ष में नहीं।"

"क्यों ?"

"इससे मनुष्य मन्दबुद्धि हो जाता है।"

"शट अप !" नाटा व्यक्ति अपनी कुरसी से उछलकर बोला।

"आजकल के पढ़े-लिखों को बात तक करने की तमीज नहीं," मिस नारायण अपना मुँह रूमाल से पोंछती हुई बोलीं।

"अच्छा, यह बताइए," रायबहादुर शायद बात बदलने के विचार से बोले, "आपने हिस्ट्री क्यों ली ?"

"साहब, इसलिए···बस इसलिए···कि ले ली।"

"लेकिन क्यों ?"

"क्योंकि इकनॉमिक्स आती नहीं, अंग्रेजी कठिन लगती है, पॉलिटिक्स में रुचि नहीं।"

"हिस्ट्री में है ?" नाटे व्यक्ति ने पूछा।

"जी !"

"तो बतलाइए," मिस नारायण बोलीं, "नूरजहां शेर अफ़गन से प्यार करती थी या जहाँगीर से।"

"पहले शेर अफगन से, बाद में जहांगीर से," मैंने कहा।

"अच्छा बताइए," रायबहादुर पूछने लगे, "एलिज़बेथ ने शादी क्यों नहीं की ?"

"यह तो वही जाने," मैंने उत्तर दिया, "परन्तु कुछ स्त्रियों के लिए

पति चुनना भी तो कठिन हो जाता है। भारत में भी ऐसे बीसियों उदाहरण मिलेंगे जब चालीस वर्ष की हो जाने पर भी स्त्रियाँ विवाह नहीं करतीं," मैंने मिस नारायण की ओर कनखियों से देखते हुए कहा।

उनका चेहरा सुर्ख हो उठा—क्रोध से या लज्जा से, पता नहीं। छूटते ही बोलीं, "यह बताइए कि टोडरमल की पत्नी नाश्ते में क्या खाती थी ?"

मैंने महसूस किया जैसे किसी ने सिर पर डण्डा मारा हो। लेकिन मैं जल्दी ही सँभल गया और उलटे उनसे पूछने लगा—

"कौनसी पत्नी ?"

अब प्रिंसिपल के घबराने की बारी थी। बोलीं—"दूसरी।"

"परन्तु उसकी तो विवाह के शीघ्र पश्चात् ही मृत्यु हो गई थी," मैंने बात बनाते हुए कहा।

"बिलकुल ठीक। मैं यही पूछना चाहती थी," मिस नारायण अपनी लज्जा को छिपाती हुई बोलीं।

अब प्रश्न करने की बारी नाटे व्यक्ति की थी। बोला, "मिस्टर प्रकाश, यह बताइए कि रजिया याकूत से क्यों प्यार करती थी ?"

"क्योंकि वह उसे अच्छा लगता था," मैंने तुरन्त उत्तर दिया। "लेकिन दिल के मामले में शक्ल की विशेष महत्ता नहीं होती—यदि श्रीमान्‌जी का संकेत याकूब के हब्शी होने की ओर है।"

"तुम्हारा विवाह के विषय में क्या विचार है ?" हिस्ट्री से सोशियोलॉजी की ओर आते हुए नाटे व्यक्ति ने कहा।

"कोई बुरा विचार नहीं," मैंने गम्भीरता से कहा।

"मेरा मतलब है कि आप विवाह में प्रेम को उचित समझते हैं ?"

"बिलकुल, और विवाह के बिना प्रेम को भी उचित समझता हूँ।"

"आप विवाहित हैं ?"

"जी, नहीं।"

"क्यों नहीं ?"

अब मुझे क्रोध आना आवश्यक था, क्योंकि यह मेरा व्यक्तिगत मामला था, जिसमें मैं किसी प्रकार का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता था। लेकिन यहाँ बात और थी। मैंने क्रोध को दबाते हुए कहा, "शादी करने की सोच रहा हूँ।"

"कब ?"

"नौकरी मिलने के बाद।"

"नौकरी मिलने के बाद !" प्रिंसिपल साहबा जैसे हवा में उछलती हुई बोलीं, "आपका मतलब है कि आप कालिज में आकर यह काम करेंगे ? असम्भव ! यह कभी नहीं हो सकता। सुना रायबहादुर आपने ?"

"मेरा मतलब यह नहीं था।"

"मैं मतलब सब समझती हूँ," वह उसी प्रकार क्रोधावेश में बोलीं, "आपने अभी तक इसलिए शादी नहीं की कि कालिज में आकर कर सकें। खूब !"

"लेकिन···"

"लेकिन आपको इस बात का पता होना चाहिए," रायबहादुर बीच ही में टोककर बोले, "कि लड़कियों के कालिज में एक कुँवारे पुरुष को कैसे लिया जा सकता है।"

"और फिर जो नौजवान भी हो," नाटा व्यक्ति बोला।

"और इस पर इतना सुन्दर सूट पहने हुए हो," प्रिंसिपल बोलीं।

जैसे मेरे सिर पर एक हथौड़ा पड़ा हो। सुन्दर सूट !

"हाँ," नाटा व्यक्ति मिस नारायण की ओर देखकर मुझसे बोला, "लड़कियों के कालिज में आप इतना सुन्दर सूट पहनकर आएँगे ?"

"नहीं, साहब ! यह सूट··· यह···सूट···" मैं एकदम रुक गया।

"आप क्या कहना चाहते हैं ?"

"मैं कालिज के लिए सूट रँगवाऊँगा नहीं।"

वे तीनों एक-दूसरे की ओर यों देखने लगे जैसे उन्हें मेरे पागलपन पर पूर्ण विश्वास हो गया हो।

"आप इतने फैशनपसन्द क्यों हैं ?" मिस नारायण बोलीं।

"कालिज में आने के बाद फैशन छोड़ दूँगा।"

"मिस्टर प्रकाश," रायबहादुर दाएँ हाथ में पकड़ी हुई पेन्सिल को बाएँ हाथ के अँगूठे पर बजाते हुए बोले, "आप कितना वेतन लेंगे ?"

"कितना ?" मैंने हैरानी से कहा, "जितना विज्ञापन में लिखा था।"

"विज्ञापन की बात छोड़िए। यहाँ की रीति के अनुसार आपको प्रति मास पचास रुपये कालिज को दान देने होंगे।"

"दान ! पचास रुपये महीना ! छः सौ रुपये प्रति वर्ष ! इतना दान तो, रायबहादुर, लखपती भी नहीं देते होंगे," मैंने अतिशयोक्ति से काम लेते हुए कहा।

"वास्तव में बात यह है कि हम पचास रुपये वेतन में देते हैं और कागज पर सौ रुपये लिखवाते हैं, ताकि हमें यूनीवर्सिटी से ग्रांट मिलती रहे।"

मेरे मन में आया कि मेज़ पर पड़ा पेपरवेट रायबहादुर के मुँह पर दे मारूं और उनकी मूँछें नोच लूँ। परन्तु दिमाग ने दिल को समझाया कि ऐसा करने से लाभ तो कुछ न होगा और हानि बहुत हो जायगी। फिर मुझे अपनी बेकारी के दिन अपनी आँखों के सामने घूमते हुए नज़र आने लगे। होटल का चार महीने का बिल, धोबी के पैसे, मित्रों का उधार। मैंने खून का घूँट भरा और चेहरे पर बनावटी मुसकान लाने की कोशिश करते हुए कहा, "यह तो बिलकुल उचित है। शिक्षा देने वाली संस्था को दान देने से बढ़कर पुण्य का कार्य और क्या हो सकता है !"

रायबहादुर बड़ी शान्ति से बोले, जैसे कुछ बात ही न हो, "दूसरी बात यह कि गरमियों की छुट्टियों का वेतन नहीं मिलेगा।"

मुझे महसूस हुआ जैसे कोई पूरी शक्ति से मेरी टाँग खींचने की कोशिश कर रहा हो।

"क्या यह भी दान में गिना जायगा ?" मैंने पूछा।

"हाँ।"

"स्वीकार है," मैंने कहा, "लेकिन क्या कुछ नकद भी देना होगा ?"

"अपनी जेब से नहीं," रायबहादुर ने उत्तर दिया।

"दूसरों की जेब से कैसे दे सकता हूँ ?"

"दान माँगकर।"

"तो मुझे भीख भी माँगनी होगी ?"

"अपने लिए नहीं। विद्या के लिए भीख माँगना पुण्य का कार्य है।"

"यदि इसके बदले मैं अपनी जेब से नकद देकर पुण्य कमाना चाहूँ तो महीने में कितने रुपये देकर पिंड छुड़ा सकता हूँ ?"

उन तीनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। आँखों-ही-आँखों में बातें कीं। फिर रायबहादुर बोले, "पाँच रुपये में। आपको पैंतालीस मिला करेंगे।"

"स्वीकार है।"

'आपको काम के विषय में तो मालूम होगा ?" प्रिंसिपल ने पूछा।

"क्या इतिहास पढ़ाने के अतिरिक्त कुछ और भी काम करना होगा ?"

"हाँ। इतिहास के अठारह पीरियड लेने होंगे; छः नागरिक शास्त्र के, छः राजनीति-शास्त्र के, छः अंग्रेजी के।"

"अंग्रेजी के ? अंग्रेजी तो मैं नहीं पढ़ा सकता।"

"क्यों ?" नाटे व्यक्ति ने पूछा, "क्या आपने इतिहास का एम० ए० यूनानी भाषा में पास किया है ?"

"मगर अंग्रेजी तो वही पढ़ा सकता है जो अंग्रेजी का एम० ए० हो।"

"खैर पढ़ा सकने की बात तो छोड़िए, मिस्टर प्रकाश," रायबहादुर बोले, "दर-असल जरूरत ऐसे आदमी की है जो ये सब विषय पढ़ा सके।"

"परन्तु विज्ञापन में तो इस विषय में कुछ नहीं लिखा था।"

"सब बातें विज्ञापन में कैसे आ सकती हैं ? तो क्या आपको स्वीकार नहीं है ?"

मेरी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा; फिर वही सड़कों की पैमाइश, बेकारी के लम्बे दिन !

"स्वीकार है। बिलकुल स्वीकार है," मैंने कहा, "मैं सप्ताह में छत्तीस पीरियड पढ़ाऊँगा और उसके साथ अंग्रेजी भी।"

"और सप्ताह में तीन पीरियड अर्थशास्त्र के," प्रिंसिपल बोलीं।

"परन्तु अर्थशास्त्र तो मैंने केवल बी० ए० तक पढ़ा है।"

"और यहाँ कौन एम० ए० को पढ़ाने को कहा है! आप केवल इण्टर क्लास को पढ़ाएँगे। तैयारी करके आदमी क्या नहीं पढ़ा सकता! प्रोफेसर बी० डी० तो तैयारी करके कानून भी पढ़ा सकते हैं।"

"और आप इण्टर को नहीं पढ़ा सकेंगे?" नाटा व्यक्ति बोला।

"पढ़ा सकूँगा," मैंने गला साफ करते हुए कहा।

"इसके अतिरिक्त," सेक्रेटरी साहब एक आँख से चेयरमैन, दूसरी से प्रिंसिपल को देखते हुए मेरी ओर उँगली करके बोले, "आपको प्रति मास लड़कियों की फीस वसूल करके बैंक में जमा करानी होगी और कालिज का हिसाब-किताब रखना होगा।"

"सेक्रेटरी साहब," रायबहादुर बोले, "यह भी कोई कहने की बात है! ऐसे साधारण काम तो चलते ही रहते हैं।"

"लेकिन, रायबहादुर, मेरा हिसाब कमजोर है। गड़बड़ हो जायगी।"

"आपका क्या मजबूत है?" प्रिंसिपल मिस नारायण मेरी ओर घूरकर बोलीं, "आपको अंग्रेजी आती नहीं, इकनॉमिक्स पढ़ा नहीं सकते, फीस में गड़बड़ हो जायगी—आखिर आपने एम० ए० में क्या पढ़ा है?"

"इतिहास," मैंने उत्तर दिया।

"मिस्टर," नाटा व्यक्ति बोला, "आप विचित्र उत्तर दे रहे हैं। आप क्या खाकर आए हैं?"

"टोस्ट और आमलेट," मैंने तुरन्त उत्तर दिया, "क्योंकि प्रोफेसर जौहरी ने बताया था कि इंटरव्यू में तुरन्त उत्तर देना चाहिए, चाहे गलत ही हो। यद्यपि मैं केवल चाय का एक प्याला ही पीकर आया था, पर रौब डालने के विचार से मैंने ऐसा कह दिया।

नाटे व्यक्ति के चेहरे पर क्रोध के चिह्न नजर आने लगे। वह बोला,

"लड़कियों के कालिज में पढ़ाने वालों को अण्डे, मांस और मछली नहीं खाने होंगे।"

"भविष्य में नहीं खाऊँगा," मैंने उन्हें विश्वास दिलाया।

"हाँ, एक बात और," मिस नारायण बोलीं।

दिल को मज़बूत करके मैं नया वार सहने को तैयार हो गया।

"आपको रायबहादुर की लड़की को एक घण्टा रोज पढ़ाना होगा। वह इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा दे रही हैं।"

"कालिज में ?"

"घर पर।"

"घर तो....."

"मॉडल टाउन में है—यही न ?" नाटा व्यक्ति बोला, "तो क्या हो गया ! सात मील का फासला ही तो है। सैर हो जायगी। नहीं तो साइकिल पर चले जाना।"

"साइकिल तो मेरे पास है नहीं।"

"तो क्या मोटर-साइकिल है ?" नाटा व्यक्ति व्यंग्यपूर्वक बोला, "बस में चले जाना।"

"उसमें तो पैसे लगेंगे।"

"तो क्या मुफ्त जाना चाहते हो ?" नाटा व्यक्ति मेरी बात का मज़ाक उड़ाता हुआ बोला, "अरे मियाँ, कितने पैसे लगेंगे—चार आने ही तो। तुम्हारे जैसे नवयुवक इससे दुगने पैसे तो सिगरेट और पान में ही उड़ा देते हैं।"

"लेकिन न मैं सिगरेट पीता हूँ, न पान खाता हूँ।"

"मैं आपसे यह नहीं पूछ रहा कि आप क्या और क्यों खाते हैं। आप सीधा जवाब दीजिए—स्वीकार है या नहीं ?"

"स्वीकार है, एकदम स्वीकार है," मैंने तुरन्त कहा।

"तो ठीक है। अब आप जा सकते हैं," रायबहादुर बोले, "आप आज ही से कालिज में काम शुरू कर दीजिए।"

"आज ही से ?"

"और कब से ?" नाटे व्यक्ति ने मुझे डाँट पिलाते हुए कहा, "आपकी तैयारी नहीं होगी ?"

"नहीं साहब मेरा सूट....."

"हाँ, आपका सूट इतना सुन्दर नहीं होना चाहिए। आप बिलकुल मामूली सूट पहनकर आइए। दूसरे, सुन्दर बनने की कभी कोशिश मत करना। बाल वर्ष-भर में दो-तीन बार कटवाना, वह भी छुट्टियों में। क्रीम और सुरमा कभी न लगाना। कालिज में लड़कियों से बात करते समय नीची निगाह रखना। कभी चेहरे पर मुसकराहट नहीं लानी होगी। यह भी ध्यान रखें कि अकेली लड़की से कभी बात न करें।"

"प्रोफेसर से भी ?"

"हाँ, लेडी प्रोफेसर से भी नहीं," नाटे व्यक्ति ने कहा।

मैंने सेक्रेटरी की ओर देखकर पूछा, "आपकी लड़की किस क्लास में पढ़ती है ?"

"आपको इससे क्या ?" वह भैंगी आँखों में अपना सारा क्रोध समेटकर बोले, "तुम्हें इससे क्या मतलब ?"

"मेरा मतलब है कि उसे भी..."

"क्या उसे भी ?" वह पूरी शक्ति से दाएँ हाथ का मुक्का मेज पर मारते हुए बोले, लेकिन इसका प्रभाव मेरे बजाय दवात पर हुआ और उसकी स्याही उछलकर उनके मुँह पर जा गिरी। उन्होंने हाथ से स्याही को पोंछा और जब हाथों को देखा तो क्रोध से नीले-पीले हो गए और मुझे डाँटकर बोले—"आप फौरन तशरीफ ले जाइए।"

मैं अपनी सीट से उठा। तीनों को नमस्ते करके मेज पर रखा हैट लेकर मैं कमरे से बाहर निकलने लगा था कि सेक्रेटरी की आवाज मेरे कान में पड़ी। "मिस्टर ! आप मेरा हैट लिये जा रहे हैं।"

मैं वापस लौटा। उस हैट को मेज पर रखा, दूसरा उठाया और जल्दी-जल्दी कमरे से बाहर निकल गया।

दूसरा विवाह

दूसरा विवाह

जब सड़क के किनारे एक दुकान दिखाई दी तो मैंने ब्रेक लगाकर जीप रोक ली और उस पर से उतर पड़ा।

"क्यों भाई! चाय मिल सकती है तुम्हारे यहाँ?" दुकान के पास पहुँचकर, मैंने दुकानदार से पूछा।

"जी हाँ! जरूर मिलेगी।"

"शुक्र है साठ मील चलने के बाद एक दुकान तो मिली।" गाड़ी से उतरकर, मेरे पास आकर, मेरे मित्र एवं सहयात्री वली मुहम्मद बोले।

गाड़ी को सड़क के एक ओर लगाकर हम दोनों दुकान के तख्ते पर टिक गए। उसके बाहर लोहे की दो-तीन कुरसियाँ पड़ी थीं। एक कुरसी पर कोई भले से आदमी, जिनकी आयु चालीस से ऊपर होगी, बैठे थे। वे कमीज़, पाजामा और कोट पहने और सिर पर पगड़ी बाँधे हुए थे। वैसे देखने में वे बड़े गम्भीर तथा धीर प्रकृति के पुरुष प्रतीत होते थे।

दुकानदार ने दो प्यालियों में चाय भरकर हमारी ओर बढ़ाई।

"अल हम्दुल्ला!" वली मुहम्मद ने प्याली सँभालते हुए कहा। "चाय के बग़ैर तो जान ही निकल रही थी।"

मैंने भी प्याली उठाई और हम दोनों ने एक-एक घूँट भरा। बड़ी कठिनाई से उस घूँट को गले के नीचे उतारकर, हमने एक-दूसरे की ओर देखा, प्यालियों को नीचे फ़र्श पर रखा और उठ खड़े हुए। मैंने जब दुकानदार की ओर पैसे बढ़ाए तो वह हैरान होकर बोला, "क्यों साहिब,

चाय पसन्द नहीं आई ?"

"चाय तो बुरी नहीं," वली मुहम्मद ने उत्तर दिया, "लेकिन भेड़ का दूध, जो हमारे आबाओ अजदाद (पूर्वजों) ने कभी सूँघा तक नहीं था, तुमने हमें पिला दिया।"

"भेड़ का दूध ?" दुकानदार बोला।

"गाय-भैंस का तो है नहीं, ऊँट इस इलाके में होता नहीं, अब अगर भेड़ का नहीं तो....."

"आइए, आप मेरे साथ तशरीफ़ लाइए," उसे बीच ही में टोककर, उस अधेड़ आयु वाले व्यक्ति ने आश्वासन देते हुए कहा, "मेरा घर बिलकुल नज़दीक है, एक प्याली चाय वहीं पी लीजिए !"

"आपकी कृपा," मैंने उनका धन्यवाद करते हुए कहा।

"धन्यवाद किस बात का ?" वह बोले, "आप सफ़र से आ रहे हैं। आपको इस समय चाय की ज़रूरत है। यदि मैं आपकी इस तुच्छ-सी इच्छा को भी पूरा न कर सका तो मेरे दिल में एक खटक रह जायगी। मैं तो केवल अपनी सन्तुष्टि के लिए आपको चाय पिलाना चाहता हूँ।"

वह कुरसी पर से उठे और हमें अपने साथ चलने का संकेत करके स्वयं आगे-आगे चलने लगे।

उनके इस आग्रह के सामने हम क्या कर सकते थे ? विवश होकर हमें उनके साथ चलना पड़ा। शहर से बहुत दूर यह एक छोटा-सा गाँव था। उसकी पीठ पर हरा-भरा पहाड़ खड़ा उसके सौन्दर्य को बढ़ा रहा था। सारे मकान साथ-साथ बने हुए थे और उन मकानों से कुछ हटकर, बीच में एक उजाड़ मैदान छोड़कर, एक विशाल मकान था जिसके सामने पहुँचकर उन सज्जन ने दरवाज़े पर दस्तक दी। एक बूढ़े आदमी ने किवाड़ खोले और हम सब अन्दर चले गए। हम एक बड़े आँगन में प्रविष्ट हुए जिसके एक ओर एक बरामदा था। सामने की तरफ़ का दरवाज़ा मकान के अन्दर खुलता था। बरामदे में कुरसियाँ पड़ी थीं।

हमारे मेज़बान ने हमें कुरसियों पर बैठने का संकेत किया और साथ ही स्वयं भी बैठ गए। फिर बड़े मियाँ को सम्बोधित करके बोले, "रहमान, चाय तैयार है ?"

"जी हज़ूर !"

"जल्दी ले आओ।"

"अभी लाया हज़ूर,"

वह तुरन्त वहाँ से चला गया और दो मिनट बाद सफ़ेद कपड़े से ढकी हुई ट्रे लिये हुए आ उपस्थित हुआ। उसने ट्रे मेज़ पर रख दी और कपड़ा हटाकर पेशावरी बादाम, पिस्ते और बरफ़ी की भरी हुई प्लेटें निकालकर हमारे सामने रख दीं और फिर अन्दर चला गया।

"आइए जनाब, बिस्मिल्ला कीजिए," हमारे मेज़बान हमें सम्बोधित करके बोले।

"धन्यवाद !" कहकर हम ट्रे के समीप हो गए।

कुछ देर बाद चाय भी आ गई।

प्यालियों में चाय उँडेलते हुए हमारे मेज़बान बोले, "आपको यह गाँव कैसा लगा ?"

"बहुत खामोश और शान्त।"

"इसीलिए मुझे अच्छा लगता है। यहाँ गिनती के घर हैं। यहाँ के निवासी प्रायः किसान ही हैं। परन्तु हम एक-दूसरे को बहुत अच्छी तरह जानते हैं, समझते हैं। एक परिवार की तरह ही सब लोग रह रहे हैं। एक-दूसरे के दुख में शरीक होते हैं। आपस के झगड़े खुद ही निपटा लेते हैं। पहले तो मेरी किसानों ही से नित्य-प्रति लड़ाई होती रहती थी। परन्तु अब कई वर्ष से हमारे गाँव का एक भी मुक़द्दमा अदालत में नहीं गया।"

"यह सब आप ही के कारण होगा ?" मैंने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा।

"ऐसा तो नहीं है," वह बोले और एक ऐसी ठण्डी आह भरकर चुप

हो गए जिससे उनके हृदय की करुणा व्यक्त हो रही थी। तथ्य को कुरेदकर निकालना वली मुहम्मद की प्रकृति का आवश्यक अंग बन चुका है। अतएव इस प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए वह बोले, "ये लोग अपने झगड़ों का फैसला आप से करा लेते होंगे ?"

"हाँ, आपका अनुमान ठीक ही है; और किसी को भी मेरे फैसले से कभी शिकायत भी नहीं हुई। लेकिन मेरा फैसला कोई नहीं करता। खैर छोड़िए। वास्तव में बात यह है कि लड़ाई-झगड़े हमारे यहाँ कभी-कभाक ही होते हैं। लेकिन आप कुछ तकल्लुफ़ फ़र्मा रहे हैं," वह हमारी ओर देखकर बोले, "यह बादाम लीजिए न! कागजी है। मिठाई बिलकुल ताज़ा है। रात ही तो शहर से लाया हूँ।"

"मिठाई बहुत स्वादिष्ट है," मैंने कहा।

"रहमान !" वह नौकर को सम्बोधित करके बोले, "तुम भी अजीब आदमी हो। फल लाना तो तुम भूल ही गए। वाह, भाई, वाह ! जल्दी करो।"

वह भागा-भागा अन्दर गया और दो प्लेटों में केले और सेव लेकर लौट आया।

मैंने और वली मुहम्मद ने एक-दूसरे को देखा। जैसे कह रहे हों, "इसे कहते हैं आतिथ्य ! शहरों में ऐसे सज्जन कहाँ मिल सकते हैं ?"

उन्होंने चाय का दूसरा कप बनाना शुरू किया और बोले, "यह दुकानदार बाहर का रहने वाला है। इसे हमारे गाँव वाले पहले भी चेतावनी दे चुके हैं। एक बार इसे और समझाएँगे यदि यह फिर भी न माना तो दुकान उठवा देंगे। हमारे गाँव में कोई बनिया अथवा हलवाई नहीं है।"

फिर बोले, "चाय गर्म है न ?"

"बहुत अच्छी।"

चाय के बाद पान और सिगरेट आये।

"आप इस मकान में अकेले ही रहते हैं ?" सहसा वली मुहम्मद पूछ

बैठा।

"क्या आपका लड़का....."

"मेरा लड़का ?" वह उसे बीच ही में टोककर बोले, "मेरा लड़का सो रहा है। आराम की नींद। इस कोने में।" वह आँगन के एक कोने की ओर संकेत करके बोले।

अब तक हमारा ध्यान उस ओर गया ही न था। हम दोनों काँप-से उठे और इस अप्रत्याशित प्रश्न का उत्तर सुनकर शोक करने लगे; क्योंकि वहाँ एक बहुत साधारण-सी कब्र बनी हुई थी।

हमने उनकी ओर लज्जित होकर देखा। उनकी आँखों में आँसू तैर रहे थे।

"मैंने उसे अपने पास ही रख छोड़ा है। दूर रखने से शायद आदमी और जानवर उसे रौंदते और मुझे दुःख होता।"

हम दोनों चुप हो गए।

"अजीब लड़का था वहीद भी," वह बोले, "जवान और बेहद खूबसूरत। ग़ज़ब का शिकारी। उसका निशाना कभी चूकता ही न था।"

"क्या उसे कोई बीमारी हो गई थी ?" वली मुहम्मद ने पूछा।

"उसे नहीं, मुझे।"

"आपको ?"

"हाँ, मुझे इश्क का रोग लग गया था।"

हम दोनों फिर खामोश हो गए। इसके बाद हमारे मेज़बान ने अपनी कथा सुनानी आरम्भ की—

"वहीद मेरी पहली पत्नी से उत्पन्न हुआ था। तीन बच्चे और भी थे, परन्तु वे सब बचपन ही में मर गए। हम दोनों के प्रेम का एकमात्र वही केन्द्र था। वह हमारी आँखों का तारा था। मैं उसे एक क्षण के लिए भी नज़र से ओझल न होने देता। यदि मैं किसी काम से शहर जाता तो उसे साथ ही ले जाता था। वह जिस चीज के लिए ज़िद करता, हम उसे प्राप्त करते, चाहे वह हमें कहीं से भी क्यों न मँगवानी

पड़ती। हमारी यही अभिलाषा रहती थी कि उसके मुँह से निकली हुई हर बात पूरी करें। घर पर उसके लिए घोड़ा मौजूद था। अधिकांश समय उसकी देख-रेख करने और उसकी इच्छाओं को पूरा करने में व्यय होता। जब वह बड़ा हुआ तो उसकी शिक्षा का प्रश्न उठा। गाँव में तो कोई स्कूल था ही नहीं। चार मील दूर पास के बड़े गाँव में एक प्राइमरी स्कूल था। परन्तु हम उसे अपनी आँखों से दूर नहीं करना चाहते थे। अतः उसे घर पर ही पढ़ाने के लिए मास्टर का प्रबन्ध किया गया। लेकिन पढ़ने से अधिक उसे खेल-कूद का शौक था। बहुधा मैं उसे शिकार खेलने अपने साथ जंगलों में ले जाता। जंगल गाँव से दूर न था और वह शिकार से भरा पड़ा था। धीरे-धीरे उसके बड़ा होने के साथ उसका शिकार का शौक़ भी बढ़ता गया। बारह वर्ष की आयु में वह अकेला बंदूक लेकर घर से चला जाता और कुछ-न-कुछ लेकर वापिस लौटता। सोलह वर्ष की आयु में वह एक लम्बे क़द और भरे हुए शरीर वाला युवक और एक अच्छा शिकारी बन गया था।

एक बार एक विवाहोत्सव पर मैं शहर गया। वहाँ संयोगवश मेरी दृष्टि एक स्त्री पर पड़ गई, जो अत्यन्त सुन्दरी थी। पता लगाने पर यह विदित हुआ कि उसका नाम माह जमाल है और उसका पति एक वर्ष पूर्व बुखार से मर गया है।

मेरे मेज़बान ने पूछा यदि मेरा विचार उससे विवाह करने का हो तो वह बातचीत करे। मैंने अनुमति दे दी! वास्तव में उसे देखते ही मैं उस पर मोहित हो गया था। लेकिन जब घर आकर इसका ज़िक्र मैंने अपनी पहली पत्नी सईदा बानो को किया तो उसके चेहरे का रंग एकदम उड़ गया। वह विवाह के विरुद्ध तो नहीं थी, लेकिन उसे केवल वहीद का ही ध्यान था। उसका कहना था, "वह युवा है। यदि इस विवाह से उस पर कोई कुप्रभाव पड़े तो? हो सकता है कि उसमें और उसकी नई माँ में हर समय कलह रहे। इस झगड़े से आपको कितना दुःख होगा। हाँ, यदि इस विवाह से आपको सुख और आराम मिलता है, तो

मैं भला मार्ग में क्यों आने लगी ? लेकिन हमें वहीद की खुशी का भी तो ध्यान करना होगा।" मैंने उत्तर में कहा, "ये सब दलीलें अपनी जगह पर ठीक हो सकती हैं, परन्तु यदि मैंने माह जमाल से शादी न की तो पागल हो जाऊँगा। मेरा अपने ऊपर कोई वश नहीं।" सईदा बानो शान्त हो गई।

अन्त में शादी हो ही गई और नववधू घर आ गई। उसके आने का सबसे अधिक प्रभाव वहीद पर ही हुआ। अब मैं उसमें कोई रुचि न लेता था। मैं प्रायः सारा दिन माह जमाल के पास बैठा रहता। उसका संग छोड़ने में मुझे अत्यन्त दुःख होता। मुझे अब एक ही धुन सवार रहती कि माह जमाल को मैं हर तरह से प्रसन्न रखूँ। उसे खुश करने के लिए मैं कोई कसर न उठा रखता। मेरा जी चाहता था कि कपड़े, गहने और संसार की प्रत्येक वस्तु, इधर उसके मुख से बात निकले, उधर प्रस्तुत कर दूँ। यहाँ तक कि तारों पर हाथ पहुँच सके तो तारे भी तोड़-कर उसके क़दमों में रख दूँ। माह जमाल शीघ्र ही इस घर की मालकिन बन गई और उसे सब वे अधिकार मिल गए जो वहीद को प्राप्त थे। वहीद के लिए जीवन में यह सर्वप्रथम घटना थी। वह सदा सोलह वर्ष से एक विशेष वातावरण में पलता रहा था। अपने पिता का अकेला था। उसकी कोई बात टाली नहीं जाती थी; उसके मुँह से जो बात निकलती उसे पूरा किया जाता था। परन्तु अब एक दूसरी स्त्री के आने से घर की व्यवस्था ही बदल गई। अब मुझे उससे बात करने का अवसर ही न मिलता था। एक-दूसरे की कुशल पूछने का भी अवसर नहीं था। नौबत यहाँ तक पहुँची कि हम दोनों को एक-दूसरे से मिले कई-कई दिन बीत जाते। कई बार ऐसा भी हुआ कि मैं उसे देखकर आँखें चुरा गया जिससे उसने यह समझा होगा कि मैं उसकी शकल नहीं देखना चाहता। वहीद के लिए इस स्थिति का मुक़ाबला करना मुश्किल हो रहा था। जो व्यक्ति सोलह वर्ष तक एक साँचे में ढला हो, वह एकदम कैसे बदल सकता था ? उसके दिल पर इन बातों का असर पड़ने लगा। अपनी हार्दिक भावना

को वह अपनी माँ से भी छिपाए रखता। जंगल में जाकर उन्हें आँसुओं के रास्ते बाहर निकालता। लेकिन उदासी फिर भी दूर न होती। उसके चेहरे का रंग फीका पड़ गया जैसे देर से बीमार हो। उसकी नींद उड़ गई, भूख मिट गई। उसकी यह हालत देखकर उसकी माँ विक्षुब्ध होती। वह उसे समझाती-बुझाती। लेकिन इसका कुछ लाभ न होता। जैसे उसने कुछ सुना नहीं और सुना तो समझा नहीं। सईदा बानो भयभीत हो गई। कहीं उसके लाडले को कुछ हो तो नहीं गया? एक दिन उसने डरते-डरते माह जमाल के कमरे में आकर मुझसे वहीद की दशा बयान की। मुझे क्रोध आ गया?

"क्या वहीद-वहीद लगा रखा है? क्या मुझे उसके सिवाय कोई और काम नहीं है? तुम किस रोग की दवा हो? वहीद! वहीद! वहीद! वहीद न हुआ एक आफ़त हो गई।"

सईदा बानो उस समय चुप हो गई, परन्तु एक दिन एकान्त में माह जमाल से बोली, "बहन! वहीद की शकल देखकर मुझे बहुत डर लग रहा है। अल्लाह उसे सलामत रखे। तुम ही इन्हें समझाओ कि किसी डॉक्टर को बुलाकर इसकी दवा-दारू कराएँ।"

"बहन!" माह जमाल ने उत्तर दिया, "इसका मुझे दुःख है। लेकिन इसमें यह क्या कर सकते हैं? तुम खुद ही किसी को भेजकर डॉक्टर को बुलवा लो न।"

बात यद्यपि कटु थी, पर थी तो सत्य। वस्तुतः रोग का निर्णय तथा निदान करना डॉक्टर का काम था। परन्तु माँ का दिल इसके अतिरिक्त सहानुभूति का इच्छुक भी था। विवश होकर वहीद की माँ ने नौकर को शहर भेजा कि डॉक्टर को बुला लाए। डॉक्टर खान ने आकर वहीद का निरीक्षण किया और वह सईदा बानो से बोला, "इसे कोई विशेष रोग तो नहीं है, परन्तु इसके दिल पर किसी बात ने बुरा असर किया है। क्या घर में कोई दुर्घटना हो गई है?"

वह चुप रही।

"यदि आप मुझे इसे दुर्घटना के विषय में कुछ बतला दें तो शायद मुझे इसके इलाज में आसानी हो जाती।"

"दुर्घटना तो कोई नहीं हुई," सईदा बानो ने उत्तर दिया।

"तो उसके दिल पर इतना खतरनाक असर क्यों पड़ा है ?"

"उसके वालिद (पिता) अब इसरे पहले-जैसा प्रेम नहीं करते, शायद इस बात का ही असर उसके ऊपर पड़ा हो।"

"हो सकता है," डॉ० खान बोले, फिर कुछ सोचकर "ओह ! अब समझा। दूसरी शादी।"

लौटने से पहले डॉ० खान मुझसे मिले और बातों-ही-बातों में उन्होंने मुझे चौंका दिया, "मियाँ ! बच्चे की जान खतरे में है।"

"क्यों, क्या उसने कुछ खा लिया है ?"

"हाँ।"

"क्या ?"

"ग़म।"

"ग़म ! ग़म किस बात का ?"

"आपकी नई शादी का।"

"मेरी नई शादी का ?" मैं विस्मित होकर बोला, "मेरी शादी का उसे क्यों ग़म हुआ ?"

"क्योंकि उससे आपका प्रेम छिन गया।"

"हुम्।"

कुछ देर चुप रहने के बाद मैंने कहा,

"आपने कोई दवाई तजवीज़ की ?"

"दवाई तो अवश्य बतलाऊँगा, परन्तु आपको भी उसका ध्यान रखना होगा।"

"मैं अवश्य ध्यान रखूँगा।"

डाक्टर के चले जाने के बाद मैं क्रोधावेश में सईदा बानो के पास पहुँचा और उसे सम्बोधित करके बोला, "तो अब डाक्टर के पास

फ़रियाद की है।"

"फ़रियाद ? मैंने ? किस बात की ?"

"मेरी दूसरी शादी की।"

"तौबा, तौबा ! अल्लाह गवाह है। मैं क्यों ऐसा कहने लगी उससे ?"

"फिर स्वप्न देखा होगा उसने। यह सब नाटक तुम खेल रही हो।"

"कैसा नाटक ?" सईदा बानो विस्मित होकर बोली।

"यही कि पहले तो बेटे की बीमारी का शोर मचा दिया। फिर डाक्टर को बुलवाकर उससे यह कहलवाया कि उसे मेरे नये विवाह का ग़म है ताकि माह जमाल को मैं तलाक़ दे सकूँ।"

"या ख़ुदा! इतना झूठ !"

"झूठ मैं बोल रहा हूँ या तू ?" मैं क्रोध से पागल हो उठा और कोने में से एक डंडा उठाकर सईदा बानो के सिर पर दे मारा। उसके सिर में से खून का फव्वारा फूट निकला और वह बेहोश होकर गिर पड़ी। लेकिन मेरे सिर पर तो भूत सवार था। मैंने डंडे का दूसरा भरपूर हाथ उसके सिर पर दे मारा। फिर और डंडे बरसाने शुरू कर दिये। खून की धारा देखकर भी मुझे कुछ खबर न थी कि मैं क्या कर रहा हूँ। घर में उस समय कोई न था। माह जमाल किसी से मिलने गई हुई थी। उसी समय वह लौटी और यह दृश्य देखकर भयभीत और चकित होकर बोली, "आपने यह क्या ग़ज़ब ढा दिया ? सईदा बानो का खून कर डाला।"

"खून ! किसने ? किसका ?" जैसे मैं स्वप्न से चौंककर बोला और काँप-सा उठा।

माह जमाल ने सईदा बानो की नब्ज़ टटोली। नब्ज़ का कहीं पता न था। उसके हाथ-पाँव ठण्डे पड़ चुके थे और साँस उखड़ चुकी थी। वह अब एक निर्जीव वस्तु थी—एक लाश। माह जमाल विक्षुब्ध होकर बोली, "अब शोक का नहीं, काम करने का समय है। जैसे मैं कहती हूँ

वैसे कीजिए। देर का नतीजा खतरनाक होगा।"

उसने जल्दी-जल्दी सईदा बानो के खून से भरे हुए कपड़े उतारे और दूसरे पहनाए। उसके सिर और शरीर को गरम पानी से धोया। घाव पर पट्टी बाँधी और उसे दुपट्टे से ढाँका। खून के भरे हुए कपड़ों को जलाया। जमीन को अच्छी तरह से धोया ताकि खून का धब्बा (चिन्ह) न रह सके। फिर शव को वहाँ से उठाकर दूसरे कमरे में रखा। कोई दो घंटे बाद लोगों को उसके मरने की सूचना दी। सबसे यही कहा गया कि वह सहसा दिल की धड़कन बन्द हो जाने से मर गई है।

वहीद पर इस घटना का विचित्र प्रभाव पड़ा। वह उस समय घर पर मौजूद न था। बाहर से आकर उसने माँ को ढूँढा। जब उसे पता चला कि वह मर गई है तो वह विस्मित और भौचक्का-सा रह गया। जब वे उसे अन्दर कमरे में ले गए तो माँ को देखकर वह न रोया न चिल्लाया, उसकी चारपाई के पास खामोश खड़ा रहा। जब हम उसकी माँ को दफनाने गये, वह उसी प्रकार चुपचाप साथ गया। जब उसे क़ब्र में उतारा गया, तब भी वह बुत बना खड़ा रहा। उसकी आँखों से आँसू की एक बूँद तक न टपकी, जैसे उनमें कभी पानी था ही नहीं।

साह जमाल ने मुझसे कहा, कि वहीद की हालत चिन्ताजनक है। माँ के मरने का ग़म वह पी गया है और यह बात उसके लिए विष का काम कर सकती है। यह सुनकर मुझे नई शादी के बाद पहली बार वहीद की चिन्ता हुई। इतनी देर के बाद मेरे दिल में सोया प्रेम जाग उठा, जैसे उसके जागने के लिए उसकी माँ की कुर्बानी ज़रूरी थी। वहीद की शक्ल देखकर मेरे होश गुम हुए जाते थे कि न जाने यह कैसे टूटे। यहाँ तक कि उसने बोल-चाल बन्द कर दी, खाना-पीना कम कर दिया। वह गुम-सुम रहता और घर से ग़ायब; कई-कई घन्टे बाहर घूमकर कभी आ गया, कभी न आया। एक दिन मैं छिपकर वहीद के पीछे गया कि देखूँ कहाँ जाता है। मैंने देखा कि वह अपनी माँ की क़ब्र के पास बैठा बातें कर रहा है। मैं सहम गया। क्या वह क़ब्र से बातें

करता है या स्वयं से। कुछ देर बाद जब मैंने वहीद के पास जाकर पूछा, "बेटा ! किससे बातें कर रहे हो ?" तो उसने कोई उत्तर न दिया और चुपचाप मेरे साथ गाँव की ओर चल दिया। वह रास्ते में भी चुप रहा। घर पर उसे किसी ने किसी से बात करते नहीं देखा। यदि मैंने उसे अपनी माँ की क़ब्र से बातें करते न देखा होता तो मुझे विश्वास हो जाता कि वह बात को भूल गया है। वह सबसे बेगाना और पृथक् रहता जैसे उसके इर्द-गिर्द कोई व्यक्ति रह ही नहीं गया, जैसे वह किसी को पहचानता ही नहीं। माह जमाल ने उसे डॉक्टर को दिखलाने का परामर्श दिया। डॉक्टर ने आकर वहीद का निरीक्षण किया और कहा कि उसके दिल पर बहुत गहरी चोट पहुँची है। दर्द पहले से बहुत अधिक हो गया है।

इलाज शुरू हुआ, परन्तु रोग में कोई अन्तर न पड़ा। एक उलटा असर ज़रूर हुआ। अब वहीद को अनिच्छा से बिस्तर पर लेटना होता जिस कारण वह घूम-फिर नहीं सकता था। न वह जंगल में जा सकता था, न माँ की क़ब्र पर। इससे उसका रोग और भी भयंकर रूप धारण करता गया। क़ब्र पर बातें करने से उसके दिल की भड़ास निकल जाती थी, परन्तु अब वह अन्दर-ही-अन्दर उसका दम घोंटने लगी। वह चार-पाई पर पड़ा हुआ तड़पता रहता; बिस्तर पर ज़ोर-ज़ोर से हाथ मारता। एक दिन वह अपने-आप ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगा। कई दिनों के बाद उसके मुँह से ये शब्द निकले—"माँ ! माँ ! तुम कहाँ हो मेरी माँ ?" वह बिस्तर से उठकर भागा और फिर जल्दी से दरवाज़ा पार कर गया। मैं उसके पीछे-पीछे भागा कि गिरने से पहले उसे सँभाल लूँ। लेकिन न जाने उसकी टाँगों में इतनी शक्ति कहाँ से आ गई थी। वह बिजली की-सी तेज़ी के साथ भागा जा रहा था। मुझे उसके पीछे भागते देखकर नौकर-चाकर और गाँव के दूसरे लोग भी भागने लगे। वहीद भागते-भागते चिल्ला रहा था, "माँ, माँ, माँ ! मैं आ रहा हूँ।" और उसके पीछे-पीछे मैं कहता जा रहा था, "वहीद ! वहीद ! बेटा वहीद !"

और हम दोनों के पीछे नौकर-चाकर और गाँव के दूसरे लोग दौड़ रहे थे। वहीद सीधा अपनी माँ की क़ब्र के पास जाकर रुका और धड़ाम से उसके ऊपर गिर पड़ा। जब मैंने उसे उठाना चाहा तो उसके दिल की हरकत बन्द हो चुकी थी।"

अन्तिम वाक्य कहते समय हमारे मेज़बान की आँखों में पानी तैर रहा था। मैं और वली मुहम्मद अपनी जेबों से रूमाल निकाल रहे थे।

मैंने उठते समय सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहा, "यह घटना आप किसी ग़ैर को भी न सुनाइयेगा, नहीं तो प्रत्येक व्यक्ति के कुछ-न-कुछ शत्रु होते हैं। पुलिस तक....."

"पुलिस को तो पता है, परन्तु वे लोग जानते हैं कि गाँव में कोई भी मेरे विरुद्ध गवाही नहीं देगा। लोग यह कहकर मुझे क्षमा कर देते हैं कि ज़मींदार एक ख़तरनाक ठोकर खाकर सँभल गया और अब उसने अपना सारा जीवन हमारी सेवा में लगाने का निश्चय किया है। मगर मैं चाहता हूँ एक-न-एक दिन कोई मुझसे वहीद की माँ का बदला ले।"

यह कहते-कहते वह चीख़ मारकर रोये और उनकी हिचकी बँध गई।

प्रतिज्ञा

प्रतिज्ञा

"क्या बजा है ?"

"ग्यारह।"

"यह कोई घर आने का समय है ?"

"और क्या बाहर जाने का समय है ?"

"यदि आपका बस चले तो सारी रात ही बाहर रहें।"

"क्या मेरा दिमाग़ खराब है ?" हरीश चिढ़कर बोला। "काम के बिना बाहर कैसे रहूँगा ?"

"इस समय तक क्या काम था ?" मालती ने पूछा।

"सुपरिन्टेण्डेन्ट साहिब के घर गया था।"

"रात के ग्यारह बजे तक वहीं रहे ?"

"दफ़्तर का काम कर रहा था।"

"ठीक ! दफ़्तर तो वे घर पर ही करते हैं ! सुना है अब सारी रात दफ़्तर लगा करेगा ?"

"यह तो काम पर है। यदि काम अधिक होगा तो सारी रात भी लग सकता है।"

"रात का दफ़्तर शायद आप ही के सिर पर चलता है।"

"मतलब ?"

"मतलब यह कि आपके अतिरिक्त शेष सब बाबू तो पाँच बजे तक ही घर पहुँच जाते हैं।"

"तुम शेप बाबुओं के विषय में क्या जानती हो ?"

"मैं नहीं जानती तो और कौन जान सकता है ?" मालती गरदन हिलाकर कहने लगी। "सुरेश के पिता, मनीषा के मामा और गुरवचन के चाचा सब पाँच बजे ही घर आ जाते हैं। उनके कथनानुसार आफ़िस साढ़े चार बजे बन्द हो जाता है और अकेले सुपरिन्टेण्डेण्ट वहाँ रुकते हैं और ६ बजे वह भी घर चले जाते हैं। जब उनसे रात के आफ़िस का पूछा तो वे हँस पड़े।"

"कौन हँस पड़े ?" हरीश ने दाँत पीसते हुए पूछा।

"मनीषा के मामा और सुरेश के पिता, और कौन ?"

"तुमसे कैसे भेंट हो गई उनकी ?"

"मैं मनीषा के घर गई थी। वहाँ वे दोनों बैठे थे।"

"तुमने और क्या पूछा ?"

"यही कि आफ़िस का काम इतना बढ़ क्यों गया है।"

"इसलिए कि तुम्हारी ज़बान बहुत बढ़ गई है।"

इतना कहकर, हरीश ने दाएँ हाथ का एक थप्पड़, मालती के दाएँ गाल पर, और उस हाथ का उलटा तमाचा उसकी बाईं गाल पर दे मारा। फिर उसने कोने में पड़ी छड़ी उठाकर मालती की पीठ पर बरसानी शुरू कर दी। वह हाथों से रोकने की कोशिश करती, तो छड़ी बाज़ुओं पर पड़ जाती। जब वह अधिक सहन न कर सकी, तो उसकी चीख निकल गई और वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी। उसके रोने की आवाज़ सुनकर, उसका दसवर्षीय लड़का प्रवीण और पाँचवर्षीय लड़की सावित्री उठ बैठे। माँ की यह दुर्गति होते देखकर वे भी चिल्लाने लगे। हरीश उनकी ओर लपका और वह मालती को छोड़कर बच्चों को पीटने लगा। अपने आँसू पोंछकर मालती तुरन्त हरीश और बच्चों के बीच खड़ी हो गई और गरजकर बोली, "खबरदार, यदि बच्चों पर हाथ उठाया !"

"तू बच्चों की बहुत सहायक है ?" वह उस पर दुबारा आक्रमण

करते हुए बोला।

"आप इन्हें हाथ नहीं लगा सकते !"

"नहीं लगा सकता ?" वह उसके चपत लगाता हुआ बोला। "देखता हूँ कैसे नहीं लगा सकता ! लेकिन पहले तुम्हारी अकड़ निकाल दूँ।" उसने पूरी शक्ति से उसको चाँटे लगाने शुरू कर दिए। आखिर वह कब तक सहन कर सकती थी—निढाल होकर गिर पड़ी।

"माँ !" लड़का चिल्लाया।

"हाय माँ, तुम्हें क्या हो गया ?" सावित्री चीख़कर बोली।

दोनों बच्चे अपनी बेहोश माँ से चिपट गए और रोने लगे।

"चिल्लाओ मत !" हरीश उन्हें डाँट पिलाते हुए बोला।

वह स्वयं बाहर से पानी लाया और मालती के मुँह पर छींटे मारकर उसे होश में लाया। होश में आते ही, वह पीड़ा से कराहती हुई बोली, "प्रवीण ! सावित्री ! मेरे बच्चो ! इधर आओ।"

दोनों बच्चे माँ से लिपट गए और सिसक-सिसककर रोने लगे।

"अच्छा, अच्छा, अब बन्द करो इस नाटक को," हरीश उसे डाँटकर बोला। "तुम्हें इतना भी ध्यान नहीं कि मैं थका-थकाया आया हूँ और भूख से कितना व्याकुल हूँ !"

मालती धीरे-धीरे उठी। रसोई-घर में जाकर उसने आग जलाई, खाना गरम किया, उसे थाली में परोसा और ले जाकर हरीश के सामने मेज़ पर रख दिया। पानी का गिलास और लोटा भी।

हरीश ने चुपचाप खाना खाया, हाथ धोये और बिस्तर पर जाकर लेट गया। मालती ने उसे गरम दूध का गिलास दिया और बत्ती बन्द करके अपने बिस्तर में जाकर लेट गई।

मालती के जीवन में यह कोई पहली ही घटना नहीं थी। विवाह के एक वर्ष पश्चात् ही उसने यह महसूस करना शुरू किया था कि उसका पति उससे प्यार नहीं करता। उसने सोचा कि शायद उस ही की ओर से कसर है; उसने उसकी और भी सेवा-सुश्रूषा शुरू कर दी। जब तक

वह घर पर रहता, उसकी बहुत देख-भाल करती, उसके नहाने-धोने, कपड़े बदलने, खाने-पीने तथा आराम का पूरा-पूरा ध्यान रखती। फिर भी हरीश खिचा-खिचा रहता। वह देर से घर आता, कम बोलता और केवल मतलब की बात करता। प्रवीण के पैदा होने पर मालती ने सोचा था कि अब तो उसके व्यवहार में कुछ अन्तर आ जायगा और बच्चे के कारण दोनों में प्रेम बढ़ जायगा। परन्तु यह उसकी भूल थी। हरीश के व्यवहार में फिर भी कोई अन्तर न आया। उसकी आदत जैसी थी, वैसी ही रही। इससे वह बहुत परेशान रहती। उससे मिलने वाली सहेलियाँ उससे उसकी उदासी का कारण पूछतीं तो वह खामोश रहती। उसके पड़ोस में रहने वाली उसकी एक सहेली ने उससे कहा, "बहन, मैं सब जानती हूँ।"

"तुम क्या जानती हो सरला बहन ?"

"कि तुम उदास क्यों रहती हो।"

"परन्तु तुम्हारे जानने से क्या होगा ?"

"मैं यह भी जानती हूँ कि हरीश कहाँ जाता है।"

"तुम जानती हो ?" वह चकित होकर बोली, "कहाँ जाता है ?"

"इक़बाल के पास।"

"इक़बाल ! कौन इक़बाल ? क्या कोई स्त्री है ?"

"और भला पुरुष के पास जाकर वह क्या करेगा ?" सरला मुस्करा-कर बोली।

"उसके पास जाकर क्या करता है ?"

"अब यह तो वही बता सकती है।" सरला ने चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान लाते हुए कहा। "परन्तु पुरुष स्त्री के पास क्यों जाता है, यह तुम नहीं जानतीं ?"

"क्या वह बहुत सुन्दर है ?"

"होगी, मैं क्या जानूँ ?" सरला ने उत्तर दिया, "परन्तु आदमी सदा सौन्दर्य पर नहीं, श्रद्धा पर भी मरता है।"

"तो यह उसकी अदा पर मरते हैं ?" मालती ने पूछा।

"इसी कारण तो तुम्हारी ओर ध्यान नहीं देते।"

"क्या मैं उसे नहीं देख सकती ?"

"मुश्किल ही है, क्योंकि बाहर कम ही निकलती है, परन्तु कोशिश करने पर उसे देखा भी जा सकता है।"

सरला की सहायता से मालती इक़बाल को देख आई। कोशिश करने पर भी वह उसमें सौन्दर्य न देख पाई। बैठे-बैठे उसका शरीर मोटा हो गया था; हर समय मुँह में पान रहने से दाँत काले पड़ गए थे। गाल फूल गए थे जिससे उसकी छोटी आँखें और भी छोटी दिखाई देती थीं। वह हर समय गाव-तकिया लगाए पड़ी रहती और उगालदान में पान थूकती रहती।

उसे देखकर मालती बड़ी हैरान हुई। क्या उसका ग्रेजुएट पति ऐसी स्त्री के जाल में फँसा हुआ था ? वह स्वयं इक़बाल से कई गुना सुन्दर थी। आख़िर उसमें आकर्षण ही क्या है ? क्या यह उन्हें पैसे देती है ? पैसे तो उल्टा यह खर्च करते होंगे। वह हर समय इसी चिन्ता में डूबी रहती। उसे बार-बार अपने अपमान का ध्यान आता। शाम को वह चार बजते ही सोचने लगती कि अब वह सीधा उसी के पास पहुँचेंगे। वहाँ क्या करते होंगे, क्या बातें होती होंगी, क्या खाते होंगे ? वे ज़रूर उसका उपहास उड़ाते होंगे। कौन ? इक़बाल, उसका उपहास उड़ाती होगी ? वह चुड़ैल न जाने कितने लोगों की रह चुकी है ? वह सौन्दर्य और बुद्धि से एकदम वञ्चित है। और उसका अपना पति इस मज़ाक़ में शामिल होता होगा ! उसकी माँ कहा करती थी, "बेटी, पति की सेवा करना। पति परमेश्वर के समान होता है।" तो पति परमेश्वर का यही काम है कि वह एक बाज़ारू औरत के साथ रहकर अपनी पत्नी के दिल को जलाए ? पति परमेश्वर ! क्या ढकोसला है ! लेकिन माँ को इस तरह झूठ बोलने की क्या पड़ी थी। माँ के पति तो सचमुच उनके लिए परमेश्वर हैं। पिताजी ने मेरे होश में कभी भी माँ को नहीं सताया।

माँ को छोड़कर उन्होंने किसी दूसरी स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। भैया भी भाभी से कितना प्रेम करते हैं। छुट्टी होते ही सीधे घर आते हैं। कितना आदर्श है उनका जीवन ! दोनों एक-दूसरे के बिना जैसे रह ही नहीं सकते और इधर मैं हूँ कि जो आदमी मेरे पल्ले पड़ा है, वह मेरी ओर निगाह उठाकर देखता तक नहीं।

परिणाम यह हुआ कि मालती अपने पति को हर समय सन्देह की दृष्टि से देखने लगी। उसे इस बात का पक्का विश्वास था कि जब वह घर या आफ़िस में नहीं होता, ज़रूर उसी स्त्री के पास होता है। छुट्टी वाले दिन यदि वह किसी मित्र के घर जाता तो वह यही समझती कि ज़रूर इक़बाल के पास चला गया है। यदि वह किसी सम्बन्धी से मिलने जाता, तो कोई उसका यह सन्देह दूर न कर सकता था कि वह उस स्त्री के घर पर ऐश कर रहा है। उसे यह भी शक था कि तनख्वाह में से भी उसे पैसे दे आता है। वह इस बात का कभी विश्वास न करती कि उसे उतना ही वेतन मिलता है जितना बतलाता है। वह पड़ोसियों से जाकर उसके वेतन के बारे में पूछ आती। जब घर आकर वह कम पैसे देता, तो तुरन्त पूछती, "शेष रुपये कहाँ गए ?"

"शेष कौनसे ?"

"चालीस कम हैं।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?"

"क्या मुझे दूध-पीता बच्चा समझ रखा है तुमने ?"

"तो यह भी पूछ आई हो ?"

"आप ठीक-ठीक क्यों नहीं बतलाते ?"

"अरे बाबा ! चालीस रुपये दफ़्तर के हलवाई के देने थे।"

"चालीस रुपये !" वह हैरानी से बोली, "चालीस का क्या लिया ?"

वह सटपटा जाता और बड़ी मुश्किल से ज़बान को काबू में रख सकता।

परन्तु वह देर तक सहन न कर सका। जब मालती ने बार-बार उसे

टोका और इस बात का फिर से जिक्र छेड़ा, तो वह चिढ़ गया। एक बार तंग आकर उसने उसके एक थप्पड़ मारा; वह खामोश रही। दूसरी बार उसने उसके कई तमाचे मारे। तीसरी बार उसने उसकी डण्डों से मरम्मत की। वह मार खाकर चुप हो जाती, लेकिन अगले दिन फिर पूछताछ शुरू कर देती। अब वह उससे यह पूछती कि वह इतनी देर करके कहाँ से आया। कभी कहता, आफ़िस में देर हो गई, कभी कहता किसी मित्र से मिलने चला गया था। परन्तु वह कहती—"मैं सब जानती हूँ तुम कहाँ से आ रहे हो।"

"कहाँ से आ रहा हूँ ?"

"जहाँ रोज जाते हो ?"

"कहाँ जाता हूँ ?"

"इकबाल के पास।"

"फिर पूछती क्यों हो ?"

"तुम्हें वहाँ नहीं जाने दूँगी।"

"क्या तुम्हारा बाप इलाका-मैजिस्ट्रेट है ?"

"बाप है या नहीं, मैं नहीं जाने दूँगी।"

"अच्छा, अच्छा, बकवास बन्द कर।"

"लेकिन आपको शर्म नहीं आती कि एक लड़के के बाप होकर भी ऐसी हरकतें करते हैं ?"

"तू खामोश नहीं रहेगी क्या ?"

"मैं तभी खामोश रहूँगी जब आप यह आदत छोड़ेंगे।"

"नहीं, तुम तभी खामोश होगी जब तुम्हारी हड्डी-पसली टूटेंगी।"

"हड्डी-पसली उस कमजात की क्यों नहीं तोड़ते जिसने आप पर जादू कर रखा है ?"

"उसको तो बाद में देखूँगा, पहले तुमसे निपट लूँ।"

यह कहकर वह डण्डा उठाता और उस पर बरसाना शुरू कर देता। वह चिल्लाती रहती, वह मारता रहता। न जाने कितने डण्डे खाने के

बाद उसकी जबान बन्द होती और वह बेहोश होकर गिर पड़ती।

कई वर्ष बीतने पर भी हरीश की आदत में कोई अन्तर न आया। उसका लड़का बी० ए० में पहुँच गया और लड़की ने मैट्रिक पास कर लिया। मालती उससे अकेले में कहती कि अब उसे बच्चों पर ही तरस खाना चाहिए, लेकिन हरीश उसे गाली देकर चुप करा देता। इक़बाल के बाद वह नौशाद के यहाँ जाने लगा था और फिर गौहर के पास। मालती को उसकी एक-एक बात की खबर रहती। वह उसकी पूरी तरह जासूसी करती थी। दिन-भर उसके दिमाग में एक ही विचार चक्कर काटता रहता कि उसका पति गौहर के पास क्यों जाता है; हो सकता है कि वह अन्य स्त्रियों के पास भी जाता हो। जब वह किसी स्त्री से भी बातें करता, उसे उस पर सन्देह होता। यदि घर पर कोई स्त्री उससे मिलने आती, वह उसे एक क्षण के लिए भी अकेला न छोड़ती, उसे सन्देह रहता कि न जाने उसका पति उससे क्या बातचीत करने लगे। उसे इस बात का भी शक रहता कि शायद वह आफ़िस जाता ही नहीं, दिन-भर गौहर के ही पास रहता है, वहाँ वे दोनों उसके विरुद्ध बातें करते हैं, उसका मज़ाक उड़ाते हैं। यदि घर पर कोई वस्तु गुम हो जाती, या इधर-उधर रखी जाती तो उसे सन्देह होता कि वह गौहर को दे आया है। जब वह उससे पूछती तो तकरार हो जाती और वह पिटती।

सावित्री और प्रवीण अपनी माँ को इस प्रकार मार खाते देखकर बहुत दुखी होते। अब वे बड़े हो गए थे। प्रवीण के कालेज के साथी इस बात को जानते थे और कभी-कभी वे मज़ाक में इसका हवाला भी दे देते थे। वह जल जाता; घर आकर माँ से कहता। वह समझाती कि उसे लड़कों की बात की परवाह ही नहीं करनी चाहिए। प्रत्येक घर में कुछ-न-कुछ झगड़ा रहता ही है। जो लड़का उससे व्यंग्य करता है, वह उसे उचित उत्तर देकर चुप करा दे। परन्तु प्रवीण की इस उत्तर से तसल्ली नहीं होती थी। पिता से बात करने की उसकी हिम्मत नहीं होती थी। वह उसके क्रोध को जानता था। जो व्यक्ति अपनी पत्नी पर हाथ उठाने

से नहीं चूकता, वह बच्चों के साथ कैसे नरमी बरतेगा। यदि वह उसे चुनौती दे और खुल्लमखुल्ला लड़ाई मोल ले, तो उसका मासिक अलाउँस तथा उसके साथ पढ़ाई बन्द होने का डर था। विवश होकर वह चुप ही रहता।

सावित्री भी चुप्पी साधे रहती। परन्तु माँ के साथ पिता का यह बरताव उसे अन्दर-ही-अन्दर खाये जाता। वह सोचती कि क्या विवाह के पश्चात् सब पति ऐसा ही करते हैं? जब से उसने होश सँभाला था वह अपनी माँ को जुल्म सहते देख रही थी। कोई दिन ऐसा नहीं आता था जब उसके माता-पिता में झगड़ा न होता हो। इसका अन्त सदा मार-पीट पर होता। परन्तु मारने वाला सदैव उसका बाप और मार खाने वाली उसकी माँ ही होती। वह देखती कि उसके बाप को न समाज का भय है, न सम्बन्धियों का डर; उसने पढ़ा था कि विवाह के बाद परस्पर प्यार बढ़ता ही है। पति और पत्नी विभिन्न विचारों के होने पर भी धीरे-धीरे समय गुजरने के साथ एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करते हैं। यही समझौता जीवन का आधार है। समझौता ही जीवन है। परन्तु यहाँ, उनके घर में, मामला एकदम उलटा था। यदि उसके माता-पिता के बीच विवाह के समय परस्पर प्रेम होगा भी तो वह समाप्त हो चुका था। अब तो उसकी पुरानी स्मृति के चिह्न तक मिट चुके थे। उसे ऐसे लगता जैसे दो विभिन्न प्रकृति वाले व्यक्ति किसी षड्यन्त्र के फलस्वरूप, एक ही जगह बाँधकर रख दिये गए हों और वे चिल्ला-चिल्लाकर इसका विरोध कर रहे हों।

मालती इस बात को महसूस करती कि जैसे-जैसे सावित्री बड़ी हो रही है, वह इन दोनों के झगड़े से मन में दुखी रहने लगी है। वह अब कालेज में दाखिल हो गई थी। परन्तु उसके चेहरे पर वह हर्षोल्लास न मिलता जो यौवन की दहलीज पर पैर रखने वाली युवतियों में होता है। लावण्यमयी होते हुए भी उसका चेहरा मुरझाया हुआ था। जब उसकी माँ को मार पड़ती, वह छिप-छिपकर रोती। उसकी आँखें लाल हो

जातीं। उसे देखकर मालती भी कभी-कभी एक ठण्डी आह छोड़ देती। वह इस आह का मतलब समझने की कोशिश करती, लेकिन कुछ समझ न पाती।

एक दिन उसने छिपकर माँ और अपने मामा को बातें करते सुना। मामा कह रहे थे—"लड़का एम० ए० में पढ़ता है। घर तो बहुत अच्छा है, लेकिन···"

वह चुप हो गया।

"लेकिन क्या ?"

"वह यहाँ की सब बातों को सुन चुका है।"

"उसे इससे क्या ?" उसकी माँ बोली, "घरों में लड़ाई-झगड़ा तो चलता ही रहता है।"

"वह तो ठीक है," मामा ने कहा, "लेकिन शरीफ़ घरानों में लोग डण्डों से नहीं, बातों से झगड़ते हैं और यहाँ की तो बात ही निराली है।"

"भैया, तुम लोग भी तो इन्हें समझा-समझाकर हार चुके।"

"हम तो तुम दोनों को समझाकर हार चुके।"

"अच्छा, मैं सौगन्ध खाती हूँ। अब ज़बान तक नहीं हिलाऊँगी।"

"अब तुम्हारी नहीं, दुनिया की ज़बान बन्द होने ही से काम चल सकता है।"

"दुनिया की ज़बान का इससे क्या सम्बन्ध ?"

"बहुत ज़्यादा," मामा ने उत्तर दिया। "लोगों की बातें वायु के पंखों पर उड़कर पहुँच जाती हैं। लड़के को इन बातों का पता चल गया है कि···"

"हम झगड़ते रहते हैं, यही न ?"

"कि झगड़े की जड़ क्या है ?"

"क्या ?" माँ ने हैरानी और घबराहट से पूछा।

"उसे हरीश के चरित्र के बारे में सब-कुछ मालूम हो गया है।"

"सच ?"

सावित्री ने ऐसा अनुभव किया जैसे इतना कहकर उसकी माँ, माथे को दोनों हाथों में सँभालकर, फर्श पर बैठ गई हो।

सावित्री के लिए वर ढूँढ़ने में उसके मामा को वास्तव में यही मुश्किल पैदा आ रही थी। उसने इससे पूर्व भी जो लड़के तलाश किए थे, उनके माता-पिता ने, लड़की के बाप के चरित्र के कारण, इन्कार कर दिया था। वकील साहिब ने अपनी बहन को अब तक यह बात नहीं बतलाई थी। वह यों कहकर कि लड़का नहीं मानता, बात को टाल देते, लेकिन आज उनके मुँह से असली बात निकल गई। मालती इस वर को बहुत पसन्द करती थी। लड़के को उसने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। वह जवान और सुन्दर था और सावित्री के लिए उपयुक्त भी। उसे आशा भी थी कि यह सम्बन्ध पक्का हो जायगा। लेकिन भाई की बात ने उसकी आशाओं पर पानी फेर दिया। भाई के चले जाने पर वह कमरे में अकेली बैठकर सोच-विचार करने लगी। इसी बीच सावित्री ने कमरे में आकर पूछा—"माँ, क्या सोच रही हो?"

उत्तर में वह बेटी को गले से लगाकर फूट-फूटकर रोने लगी।

"माँ, क्या बात है?"

मालती का रोना अब भी बन्द न हुआ।

"माँ, क्या तुम पागल हो? इसमें रोने की क्या बात है?"

"क्या तुम जानती हो?"

"हाँ।"

सावित्री की आँखों से टप-टप आँसू गिर पड़े।

बेटी के आँसू देखकर मालती ने तुरन्त उसके आँसुओं को पोंछा और उसे सम्बोधित करके बोली, "तुम डरती हो कि तुम्हारा जीवन भी नष्ट न हो जाय। ऐसा बिलकुल नहीं होगा। तुम्हारा विवाह रमेश ही से होगा।"

रात को जब बच्चे सो गए, मालती ने अपने पति से कहा, "आप जानते हैं कि भैया ने सावित्री के लिए कितना अच्छा वर ढूँढ़ा है?"

"क्या नाम है उसका?"

"रमेश।"

"हाँ, हाँ, मैंने भी लड़का देखा है। अच्छा है।"

"सावित्री के लिए बहुत ठीक है।"

"हाँ, मेरा भी यही विचार है।"

"लेकिन लड़के ने इन्कार कर दिया है।"

"इन्कार कर दिया है? क्यों?"

"वह कहता है कि लड़की के बाप का चरित्र...."

"क्या कहता है?" हरीश ने क्रुद्ध होकर कहा। "तुम बकती हो। यह केवल तुम्हारी बकवास है।"

"लेकिन यह बिलकुल ठीक है।"

"क्या है बिलकुल ठीक?" उसने पूछा।

"कि लड़के ने यों कहा है।"

"तो भाड़ में जाय ऐसा लड़का।"

"राम! राम! यह क्या कहते हो?" वह घबराकर बोली। "सात शकुन वाले मेरे होने वाले दामाद के बारे में यह क्या कह रहे हो?"

"कोई और दामाद मिल जायगा," वह गुस्से से कहने लगा।

"अच्छा वर मिलना आसान नहीं।"

"क्या दुनिया उजड़ गई है?"

"लेकिन यदि सब वर यही कहें, तो फिर?"

"क्या कहें?" हरीश चिल्लाकर बोला।

"जो रमेश ने कहा है।"

"बकवास बन्द करो, नहीं तो मार डालूँगा," वह दाँत पीसकर, क्रोधावेश से बोला।

"अगर मेरे मरने से तुम्हारी आदत बदल जाय तो मुझे मरने से इन्कार नहीं।"

"कौनसी आदत? तुम फिर बकवास कर रही हो।"

"तुम इन स्त्रियों के पास जाना बन्द कर दो।"

हरीश ने गुस्से से उसके मुँह पर तमाचा दे मारा। फिर एक और। फिर मुक्के और लातें। मालती ज़मीन पर गिर पड़ी, लेकिन फिर उठी और कहने लगी, "तुम चाहे मुझे मार डालो, लेकिन मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर लो। मेरी बेटी का जीवन मत नष्ट करो।"

"तू चुप होती है या नहीं ?"

"अगर मेरी बात मान लो तो मैं सदा के लिए चुप हो जाऊँगी।"

"सदा की बच्ची ! तू चुप नहीं रहती ? मुझे जीने देगी या नहीं ?"

"हम तो जी लिये। अपने बच्चों को भी तो जी लेने दें, यदि तुम अपनी आदत नहीं बदलोगे तो····"

उसने फिर हमला किया, मालती फिर गिर पड़ी।

"तुमने मेरे जीवन को अशान्त बना रखा है," हरीश उसके लात जमाकर बोला, "जब से तुम आई हो, तुमने मुझे चैन से नहीं रहने दिया। प्रत्येक दिन लड़ना-झगड़ना तुम्हारा स्वभाव बन गया है। तुम्हें शिकायत है मैं दूसरी औरतों के पास क्यों जाता हूँ। लेकिन मुझे रोकने वाली तुम होती कौन हो ? मैं तुमसे इतना दुखी हो गया हूँ कि केवल तुम्हें चिढ़ाने के लिए ही वहाँ जाता हूँ और जब तक तुम ज़िन्दा हो, जाऊँगा।"

"यदि मैं मर जाऊँ तो जाना छोड़ दोगे ?"

"जैसे तुम्हारा मरना आसान है !"

"अगर आसान हो जाय तो ?"

"तब शायद छोड़ दूँ," उसने चिढ़कर कहा।

"सच ?" वह उठती हुई बोली।

वह बाहर गई और शीघ्र ही वापस आकर बोली, "तुम्हारी बात मंजूर है, लेकिन प्रतिज्ञा का उल्लंघन मत करना। कम-से-कम मेरी सावित्री के लिए।"

इतना कहकर, उसने मिट्टी के तेल से सने हुए अपने शरीर के कपड़ों को दियासलाई दिखलाई। एकदम ज्वाला वायु में भपक उठी।

बाबूलाल

बाबूलाल

मेरे मित्रों की संख्या हाथ की उँगलियों पर नहीं गिनी जा सकती, किन्तु इसका अर्थ यह भी कदापि नहीं कि वह इतनी अधिक है कि गिनी ही न जा सके। उनमें सबसे प्रथम नम्बर बाबूलाल का है। इज्जत नगर में यह नाम सब जगह मिलेगा। प्रत्येक व्यवसाय के व्यक्तियों में बाबूलाल का नाम सुनने में आएगा। यही नहीं, हर घर में आपको यह नाम अवश्य मिलेगा। प्रत्येक दफ़्तर में दो बाबूलाल अवश्य मिलेंगे।

मेरे नाई का नाम भी बाबूलाल है। नाई के महत्त्व को किसी प्रकार भी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। मनुष्य को सुन्दर बनाने में वह कितना योगदान देता है। किन्तु इस देश में कुछ पेशों को दूसरे पेशों से घृणित और बुरा समझा जाता है। एक व्यवसायी अपने व्यवसाय को दूसरे से अच्छा मानता है और दूसरे व्यवसाय को घृणा की दृष्टि से देखता है।

इसी प्रकार प्रत्येक हिन्दू दूसरे हिन्दू को। यहाँ तक कि मनुष्य को मनुष्य से घृणा है और भाई को भाई से। कहते हैं प्रत्येक देश और प्रत्येक मनुष्य की कुछ विशेषता होती है। हिन्दुस्तान और हिन्दू की विशेषता घृणा है।

बाबूलाल को भी दूसरे पेशों से घृणा है और दूसरे पेशेवरों को उससे या उसके पेशे से। वह हर पन्द्रहवें दिन मेरे बाल काटने आता है। इस आधे घण्टे में वह मुझे न केवल अपने मुहल्ले, वरन् सारे इज्जत नगर की

दो सप्ताह की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक घटनाओं पर आलोचना करके चेतन करता है।

उस दिन कैंची चलाते हुए वह बोला, "साहब, आपने कल का समाचार-पत्र देखा है ?"

"देखा है। क्यों ?"

"मेरा मतलब अंग्रेजी के समाचार-पत्र से नहीं। यहाँ का हिन्दी का समाचार-पत्र देखा है क्या आपने ?"

"क्या यहाँ से कोई हिन्दी का समाचार-पत्र भी निकलता है ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"आपको यह भी नहीं मालूम ?" बाबूलाल ने बालों में कंघी फेरते हुए कहा, "यहाँ से एक उर्दू का और तीन हिन्दी के समाचार-पत्र निकलते हैं। इस हिन्दी अखबार के चार पृष्ठ होते हैं। डेढ़ पृष्ठ में विज्ञापन होते हैं, आधे पृष्ठ पर सूचनाएँ और बाकी दो पृष्ठों पर गालियाँ।"

"गालियाँ ! समाचार-पत्र में ? किसे ?"

"जिसकी बारी हो। जैसे आजकल आपकी बारी है।"

"मेरी बारी !" मैंने आश्चर्य को छिपाते हुए पूछा।

"हाँ साहब," बाबूलाल ने कैंची चलाना बन्द करके मेरी ओर देखते हुए कहा, "सम्पादक के पास हर एक अफसर का नाम मौजूद है और वह बारी-बारी से सबकी जाँच-परख करता है।"

"जाँच करता है ? यह कैसे ?"

"इसी प्रकार हमला करके वह देखना चाहता है कि जो व्यक्ति बाहर से आता है वह साहसी है अथवा कायर।"

"और यदि वह उल्टा हमला करे तो ?" मैंने पूछा।

"तो उसका सम्मान होता है," बाबूलाल ने तुरन्त उत्तर दिया और बात को जारी रखते हुए वह बोला, "यहाँ के राजा ने आज से दो सौ वर्ष पहले यही किया था और लोगों ने अविलम्ब उसकी सत्ता को स्वीकार कर लिया था। वह बौद्ध-मत का उपासक था। यहाँ के लोग जैनी

थे। किन्तु इसके अतिरिक्त इन्हें शासन स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। यही नहीं, उसने यहाँ बौद्ध मत के विकास के लिए जैनियों के धर्म बदलने, उनके मन्दिरों को बौद्ध-मन्दिरों में परिवर्तित करने के विचार को पूर्णतः जारी रखा और यहाँ के निवासियों को इससे कोई कठिनाई नहीं हुई। किन्तु इसके विरुद्ध जब आज स्वतन्त्रता मिल जाने के पश्चात् उन्हें एक धार्मिक शासन से स्वाधीनता मिली तो वह शोर मचा रहे हैं।"

"यह क्यों ?"

"जो बैल हर क्षण जुए में जुते रहें, वे स्वाधीनता प्राप्त करने पर ऐसा ही करते हैं।"

इन्हीं बातों के कारण मैं बाबूलाल का सम्मान करता हूँ। वह केवल नाई ही नहीं, अच्छा-खासा राजनीतिज्ञ भी है और ज़माने की नब्ज़ को वह खूब पहचानता है। मैं उसे आठ आने बाल कटवाई के देता हूँ और आठ आने आलोचना के।

उसने मेरे बालों को कंघी की लपेट में लेकर कैंची चलाते हुए कहा, "तो क्या सचमुच आपने यहाँ के अखबारों को नहीं पढ़ा ?"

"मैंने उन्हें देखा तक नहीं।"

"सुना तो होगा ?"

"क्या ?"

"आपको खूब गालियाँ दी जाती हैं।"

"मुझे ! गालियाँ ! लेकिन क्यों ?"

"हर रोज एक नई बात के लिए," वह बोला। "उदाहरण के लिए आपने किसी मास्टर की बदली की है, उस पर उसने तीन लेख लिखे।"

"यह तो उसने बहुत अच्छा किया," मैंने तुरन्त कहा।

"क्यों ?"

"इसलिए कि कम-से-कम किसी अखबार ने बेचारे मास्टर के

विषय में कुछ तो लिखा।" मैंने ज़रा सोचकर फिर कहा, "उस मास्टर के विरुद्ध तो बहुत-सी शिकायतें हैं और दूसरे यह तो हमारे विभाग का भीतरी मामला है। आपके हिन्दी के अखबार को उससे क्या ?"

"तो क्या वह बाहरी मामलों में दखल देगा ?" बाबूलाल ने हँसकर कहा, "साहब, वह तो आपके घरेलू मामलों में भी दखल देता है।"

"घरेलू मामलों में !" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, जैसे आपने उस दिन कुछ व्यक्तियों को खाने पर आमन्त्रित किया था। उस दिन दो पृष्ठों का एक लेख उसमें छपा।"

"तो क्या यह मामला भी अखबार में छपने लायक है ?.....क्या नाम है उसका ?"

"दुर्जन"

"क्या उस दिन वाले 'दुर्जन' में दो पृष्ठों में मेरी दावत ही का समाचार था ?"

"जी, हाँ।"

"उसमें क्या लिखा था ?"

"यही कि आप महीने में कम-से-कम दो पार्टियाँ देते हैं। उसमें खर्च होता है। यह सब रुपया कहाँ से आता है ? आप अवश्य रिश्वत लेते होंगे और साथ ही पुलिस-विभाग को भी लताड़ा था कि वह ऐसे अफ़सरों पर कड़ी निगरानी क्यों नहीं रखता। फिर वे इसमें खास-खास व्यक्तियों को बुलाते हैं।"

"किन्तु मेरी दावत की सूचना सम्पादक को कैसे मिल जाती है ?"

"उनके मुख्य सम्वाददाता से।"

"वह कौन है ?"

"रोगीराज जी। आपने उन्हें देखा होगा।"

"अवश्य देखा होगा।" और मैं मौन हो गया।

रोगीराज को मेरे विरुद्ध लिखने की आवश्यकता क्यों हुई ? यह ठीक है कि एक समय हमारी अनबन हो गई थी। उसने ऐसी अजीब हर-

कर्तें की थीं जिन पर बाजीगरों को भी लज्जा आ जाय। किन्तु फिर उसने मुझसे लिखकर क्षमा माँग ली थी। उस पर हमारे दो मित्रों के हस्ताक्षर भी हैं और अब उसने फिर यह हरकत आरम्भ कर दी।

"आप शायद रोगीराज को जानते नहीं," बाबूलाल बोला।

मैं खामोश रहा।

"वह पहले इज्जत नगर में पान की दुकान करता था। फिर डाकखाने के सामने बैठकर टिकट बेचा करता था और नवयुवकों के प्रेमपत्र लिखा करता था। पत्र लिखते-लिखते उसने रुपया जमा कर लिया, किन्तु स्वयं प्रेम के जाल में फँस गया। वह एक हलवाई की लड़की से प्रेम करने लगा। एक दिन कुछ हलवाइयों ने डाकखाने के सामने उसकी दुकान पर आक्रमण कर दिया। उसके कार्ड, लिफाफे आग की और कुछ जूते उसकी भेंट कर दिए। नत्थू हलवाई ने लातों से उसकी पूजा की। वह लज्जित होकर इज्जत नगर से भाग निकला और सिनेमा में पान बेचने लगा। पान बेचते-बेचते और सिनेमा की लड़कियों को देखकर उसने कविता आरम्भ कर दी, और फ़िल्मी गाने लिखने लगा। मेहनती और चालाक तो था ही, उसने कुछ अंग्रेजी की पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करके उन्हें छपवा दिया और लेखक बन बैठा।"

न जाने क्यों हवा में मैंने एक लम्बी आह छोड़ दी। यहाँ रोगीराज ने मेरे साथ जो व्यवहार किया था उससे मैं ही नहीं, इज्जत नगर के लोग भी परिचित थे। वह कविता करना जानता था, उसने मुझ पर कविता करनी शुरू कर दी। मैंने उसे रोका। वह न माना। एक दिन मैंने कुछ जूते उसको अर्पित किए। वह मान गया और साथ ही एक क्षमा-पत्र भी लिखकर दिया और अब उसने फिर वही हरकत शुरू कर दी। क्यों? मैं स्वयं चकित था।

बाबूलाल भाँप गया। बोला, "आप हैरान हैं कि वह ऐसा क्यों कर रहा है?"

"हैं!" मैंने जैसे स्वप्न से चौंककर कहा।

"वह चाहता है कि आप भी एक क्षमा-पत्र लिखकर दें।"

"किस बात का ?"

"भविष्य में आप अपने दफ़्तर में जो-कुछ भी करेंगे रोगीराज से पूछे बिना नहीं करेंगे।"

"और घर पर ?"

"जब किसी को निमन्त्रित करेंगे तो उसे अवश्य बुलाएँगे। उसे दावतों से प्रेम है। उसे इस बात का पता है कि आपके यहाँ दावत वाले दिन बहुत ही अच्छे-अच्छे खाने बनते हैं।"

"किन्तु तुम तो कह रहे थे कि उसे जूतों से प्रेम है।"

"वह नम्बर एक, यह नम्बर दो। और इसी कारण 'दुर्जन' में आपके क्लब के विरुद्ध लेख छप रहे हैं क्योंकि वहाँ दावतें होती हैं और रोगीराज को निमन्त्रित नहीं किया जाता।"

"तो रोगीराज अन्य अफ़सरों के भी विरुद्ध है ?" मैंने शान्ति की साँस लेते हुए पूछा।

"स्पष्ट है। उसने प्रत्येक विभाग में अपने जासूस छोड़ रखे हैं।"

"उसे इतने जासूस मिल कहाँ से जाते हैं ?"

"कोई भी अफ़सर सब अमलेवालों को प्रसन्न नहीं रख सकता। ऐसे व्यक्तियों की शिकायतें छापने के लिए उसके अखबार में हर समय जगह रहती है। ये लोग अपने अफ़सर से सम्बद्ध बातों की सूचना रोगीराज को देते रहते हैं।"

"थोड़े दिन की बात है एक अफ़सर की पत्नी ने अपने नौकर को घर से निकाल दिया। यह सूचना 'दुर्जन' में मोटे अक्षरों में छपी। जब कर्नल शिवराज ने मकान बनाना शुरू किया तो उसने उस पर एक जाँच-कमेटी बैठाने की माँग की। राना बहादुरसिंह को मकान दिये जाने पर उसने ऊधम मचा दिया। एक टाइपिस्ट लड़की को दफ़्तर से दुराचार के अपराध में निकालने पर 'दुर्जन' ने आकाश और धरती को एक कर दिया। उसमें अफ़सरों को अपराधी ठहराया। एक क्लर्क को झूठी डिग्री

दिखाकर नौकरी करने के कारण अलग कर दिया गया। 'दुर्जन' ने इस सूचना को छापकर सारे शहर में कुहराम मचा दिया।"

"लोग यह नहीं चाहते कि अपराधी को दण्ड मिले ?" मैंने पूछा।

"यह तो मालूम नहीं कि लोग क्या चाहतें हैं। हाँ, वे वही चाहते हैं जो 'दुर्जन' चाहता है और 'दुर्जन' वही चाहता है जो रोगीराज चाहता है।"

"और रोगीराज क्या चाहता है ?" मैंने पूछा।

"शरीफों का अपमान करना, अफ़सरों की पगड़ी उछालना और हुकूमत को तंग करना।"

"इसकी तह में क्या है ?"

"तह में ? वह मन्त्री बनना चाहता है।"

"मन्त्री ?" मैंने हँसकर पूछा, "वह कैसे ?"

"वह राजनीतिक नेताओं को बताना चाहता है कि जब वह अफ़सरों का अपमान कर सकता है तो किसका नहीं कर सकता ! नेता शंकित हो जायँगे। अन्त में एक दिन पार्टी एक मेम्बर को बैठा देगी और रोगीराज को टिकट मिल जायगा। मेम्बर बनने के बाद मन्त्री बनना इतना कठिन नहीं।"

"तो 'दुर्जन' समाचार-पत्र इसी कारण निकाला गया है ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"और किसलिए, साहब !" बाबूलाल उस्तरे को तेज करता हुआ बोला, "यह प्रजातन्त्र है, मज़ाक तो नहीं। शक्ति प्राप्त करने के द्वार सब के लिए समान खुले हैं, केवल साहस का प्रश्न है।"

"और रोगीराज साहस कर रहा है ?" मैंने पूछा।

"बिलकुल," बाबूलाल उस्तरा चलाते हुए बोला, "यही तो प्रजातन्त्र की बरकतें हैं।"

"किन्तु सम्पादक व्यक्तियों के विरुद्ध क्यों लिखता है ?"

"और क्या गधों के विरुद्ध लिखे ?" बाबूलाल तुरन्त बोला।

"मेरा मतलब है सम्पादक को एक उत्तरदायी मनुष्य होना चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् उसका उत्तरदायित्व और अधिक हो जाता है।"

"बेशक!" बाबूलाल बीच ही में बोल उठा, "परन्तु केवल अपने निजी स्वार्थ के लिए वह चाहता है कि उसका अखबार अधिक बिके। अब इज्जत नगर के व्यक्ति इतने शक्तिशाली तो हैं नहीं और सम्पादक इससे पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं। चटपटी बातों में उन्हें आनन्द आता है और इससे अखबार की बिक्री होती है।"

"किन्तु सम्पादक तो जानता ही होगा कि ऐसी बातों से न देश की सेवा होती है न समाज की।"

"उसके पेट की तो होती है," बाबूलाल उस्तरे को एक ओर रखकर पानी की बोतल को सँभालकर बोला, "देश और समाज की चिन्ता उसे नहीं सताती। फिर 'दुर्जन' के सम्पादक को तो आपने देखा ही है। ऐसा लगता है कि कई पुश्तों से भूखा मरना उसका पेशा रहा है। सुना है दसवीं फेल है, किन्तु शेरबाजी करता है। शेर ऐसे कहता है जैसे प्राइमरी स्कूल का मास्टर बच्चों को पाठ पढ़ा रहा हो। लोग उसकी कविता सुनकर उपहास से तालियाँ बजाते हैं तो वह समझता है प्रशंसा कर रहे हैं।"

"किन्तु क्या वह जर्नलिज्म का डिप्लोमा पास नहीं है?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"मैट्रिक फेल डिप्लोमा क्या लेगा, साहब," बाबूलाल बोला। फिर वह मेरे सिर में तेल डालकर बालों में मालिश करते हुए बोला, "वह तो नौकर है। असली मालिक तो दिल्ली में रहता है। अब सम्पादक तो अपने मालिक का दास है और क्योंकि मालिक रोगीराज का मित्र है, इस कारण वह रोगीराज का भी दास है।"

जब बाबूलाल मालिश करके अपना सामान इकट्ठा कर चुका तो बोला, "साहब आप एक काम कीजिए।"

"क्या ?" मैंने उसके हाथ में रुपया देते हुए पूछा।

"आप इसी वस्तु से उसकी सेवा कीजिए। संसार में केवल इसका शासन है," वह रुपया दिखाते हुए बोला। "आप इससे सम्पादक को खरीद लीजिए। उसने अपनी गन्दी कविताओं का संग्रह छापा है। उसकी दो-तीन सौ कापियाँ खरीदकर स्कूलों में बाँट दीजिए। आपने रोगीराज पर भी तो दया की है। किन्तु सब उस प्रकार के नीच नहीं होते।" कुछ सोचकर बोला, "फिर 'दुर्जन' की अनेक कापियाँ खरीदकर स्कूलों में भेजिए। सम्पादक को दावत का निमन्त्रण दीजिए। प्रत्येक त्योहार के अवसर पर उसके घर मिठाइयाँ और फल भेजिए। गधा भी पसीज जाता है, फिर वह तो आदमी है।"

"मुझे इसमें सन्देह है।"

"किन्तु पैसे की शक्ति पर तो सन्देह नहीं," बाबूलाल तत्त्वज्ञानी के रूप में बोला और रुपये को जेब में डालते हुए अपनी थैली को सँभालकर 'नमस्ते' कहकर चलने लगा। मुझे सहसा कुछ सूझा। मैंने उससे पूछा, "बाबूलाल, एक बात बताओ। जब 'दुर्जन' इतनी गन्दी बातें लिखता है तो लोग उसे सहन क्यों करते हैं ?"

"लोगों की भी आपने अच्छी कही, साहब !" वह बोला, "उनका जीवन नीरस और शुष्क होता है, दूसरों की बुराई सुनने और करने में फीकेपन से छुटकारा मिल जाता है और 'दुर्जन' इस बात को खूब जानता है।"

"प्रजातन्त्र में यही बुराई है," मैंने दीवार पर दृष्टि टिकाकर कहा। "अनपढ़ लोगों के हाथ में प्रजातन्त्र ऐसा है जैसा बच्चे के हाथ में चाकू। वह इस चाकू से दूसरों की उँगलियाँ काटने भागता है।"

"कभी उससे अपना ही गला काट लेता है," बाबूलाल बोला। फिर वह घड़ी देखकर बोला, "टाइम अधिक हो गया है, अभी जुडीशल कमिश्नर, एक्साइज़ कमिश्नर, लेबर कमिश्नर, फूड कमिश्नर और जागीरात कमिश्नर की भी हजामत बनानी है। अब चलता हूँ अच्छा, नमस्ते !"

मैंने उसके पीछे एक हसरत-भरी लम्बी निश्वास छोड़ी। जालिम का कितना सौभाग्य है और कितनी ऊँची पहुँच है! फिर वह बुद्धिमान भी है। यदि वह राजनीतिक नेता होता तो कितना सफल सिद्ध होता?

लम्बे दिन, जलती रातें

लम्बे दिन, जलती रातें

आज मैं उस स्त्री की कहानी लिखने बैठा हूँ जो पिछले तीस वर्ष से मेरे दिमाग़ में मौजूद है, जो मुझसे लगातार पूछती चली आ रही है, 'मेरी कहानी नहीं लिखोगे ?' मैं छाती पर एक ऐसा भार अनुभव करता हूँ जो इस कहानी को लिखने के बाद ही उतर सकेगा।

मैं उसे तीस वर्ष से इसलिए जानता हूँ कि जब से मैंने होश सँभाला वह मेरी आँखों के सामने मौजूद रही। मैंने कोशिश की कि उसे भुला सकूँ, उसकी याद को दिल से निकाल दूँ, किन्तु ऐसा न कर सका। पहले वह मेरे सामने मौजूद रही, बाद में उसने मेरे स्मृति-पटल पर प्रभुत्व जमाए रखा। जब मैं दूर शहर में चला जाता तो उसका विचार मस्तिष्क के किसी कोने से निकलकर मेरे सामने साकार हो जाता और उसका चेहरा मेरी आँखों के सम्मुख घूमने लगता। फिर उसकी दुखभरी कहानी, उसकी क्रन्दन करती हुई जवानी, मुझे रुला देती।

मैं सोचता कि विधाता ने उसे पैदा करके संसार पर क्या अनुग्रह किया है ? उसके अस्तित्व में आने से किसी को क्या लाभ पहुँचा है ?

उसके जन्म के समय उसके माता-पिता को कितना दुःख हुआ था ! ऐसी कुरूपा का वे क्या करेंगे ? उसका काला रंग ही उसे इतना भयावह नहीं बना रहा था जितने उसके बाहर को निकले हुए दाँत। उनके कारण उसकी छोटी-छोटी आँखों और तंग माथे वाला चेहरा और भी कुरूप लगता था। लड़की काली हो, साँवली ही हो, भद्दी तो न हो।

लड़का होता तो और बात थी, परन्तु इसे वे क्या करें ? पिता ने प्रार्थना की कि वह चल बसे। माँ ने मन-ही-मन सोचा कि इसका क्या होगा ? लेकिन वह काँस के समान बढ़ती गई। मुहल्ले की लड़कियाँ व्यंग में उसे शूर्पणखा कहतीं। सोलहवें वर्ष में पदार्पण करने पर जब उसका यौवन उभरकर आया, तो उसके माता-पिता को चिन्ता हुई। वर की खोज तो पहले ही से की जा रही थी, अब तेज़ी से होने लगी। सब सगे-सम्बन्धियों से कह दिया गया। नाइयों और पुरोहितों ने पूरी शक्ति से अपना काम आरम्भ कर दिया। द्रौपदी के लिए वर ढूँढ़ना कौनसा सुगम था ? लेकिन इतना कठिन भी नहीं था। भारतीय विवाह-पद्धति का यही तो स्वर्णिम पहलू है कि कुरूप लड़कियों की भी शादी हो जाती है। गाँव का लड़का यदि लड़की को देखने की इच्छा प्रकट करे, तो न केवल उस गाँव में, बल्कि इलाके-भर में यही एक बात चर्चा का विषय बनी रहेगी। जब गाँव के चौक में चार व्यक्ति इकट्ठे होंगे, तो यही बात करेंगे। जब स्त्रियाँ दोपहर को खेतों में बैठकर अपने आदमियों को खाना खिलाएँगी तो ताज़ा समाचारों में इसी को महत्त्व देंगी।

"सुना तुमने ? बन्ते सुनार का लड़का लड़की देखने को कहता है।"

"लड़की देखने को कहता है !" उसका देवर उत्तर देता। उसकी····" वह एक वज़नदार गाली वायु में छोड़कर कहेगा, "साला लड़की देखने का !"

"बैल हाँकने वाले साँटे से यदि उसकी मरम्मत हो जाय तो शायद इरादा बदल दे," उसका चचेरा भाई कहेगा।

"अरे भाई ! ठीक ही तो कह रहा है," उसका पति अपने विचार प्रकट करेगा, "बाद में तो नहीं पछताएगा।"

"ऐं ! ज़रा शीशे में अपनी शक्ल तो देख," उसकी पत्नी तुरन्त उत्तर देती। "जैसे कोई भूत हो। बाद में तो नहीं पछताएगा !" वह मुँह बनाकर उसके शब्दों को दुहराती हुई कहती।

"भई, हम भी देखकर ही करेंगे," एक दूसरा लड़का बोला।

"ओ माँ के···" उसका बूढ़ा बाप बोला। "अपनी बहन का क्या करोगे ? यदि उसकी सगाई के समय उन्होंने उसे भी देखने को कहा तो उसे गहनों से सजाकर बाज़ार के बीच बिठला देना और खुद अपनी और घर वालों की नाक कटवाकर कुएँ में छलाँग लगा देना।"

"उनकी···" दूसरा किसान बोला, "जो लड़की देखने की बात करे उस साले को ज़िन्दा खेत में न गाड़ देंगे क्या ?"

इस प्रकार लड़की देखने की बात घर-घर छिड़ती। खेतों और कुओं पर भी उसका वर्णन होता। केवल नवयुवक ही लड़की देखने के पक्ष में होता, लेकिन घरवालों और सम्बन्धियों के विरोध के कारण मन-की-मन ही में रखता और सबके दिल में एक ही बात होती—अपनी-अपनी लड़की की। यदि लड़के ने उसे अस्वीकार कर दिया तो ? क्या उनकी नाक न कट जायगी ? क्या वे जीते-जागते मर न जायँगे ? क्या वे बिरादरी में मुँह दिखलाने योग्य रह सकेंगे ? ये प्रश्न उन्हें विक्षुब्ध करते और चूँकि ग्रामवासी आदर्शवादी नहीं, यथार्थवादी होते हैं, वे सर्व-प्रथम नाक को स्थिर रखना और बिरादरी में सम्मानपूर्वक रहना चाहते हैं, इसी कारण वे लड़की को दिखलाने के पक्ष में न होते। उनके विचारा-नुसार विवाह के पश्चात् लड़की को देखने के अतिरिक्त लड़के के पास और काम ही क्या होता है ?

द्रौपदी के साथ भी यही हुआ। उसे देखने का पहले तो प्रश्न ही पैदा नहीं हुआ और यदि हुआ तो उसे दबा दिया गया। परन्तु प्रत्येक गाँव में एक वर्ग-विशेष सार्वजनिक सेवा के लिए होता है। उनका कार्य यही होता है कि सगाइयों को तुड़वाएँ। वे लड़के या लड़की के घर इस तरह जायँगे, जैसे राह चलते-चलते अचानक वहाँ रुक गए हों। हुक्के के दो कश लगाकर सगाई-तोड़ व्यक्ति अपने मेज़बान से पूछेगा—

"घर पर तो सब कुशल है न ?"

"भगवान् की कृपा है।"

और दस-पाँच दम लगाकर वह पूछता—

"कितने बच्चे हैं ?"

"दो लड़के और एक लड़की।"

"सबका विवाह हो चुका ?"

"नहीं, अभी बड़े लड़के की सगाई की बात चल रही है।"

"बड़ी अच्छी बात है। भगवान् की कृपा होनी चाहिए।"

"आप लोगों की दया है।"

"कहाँ से सम्बन्ध की बात हो रही है ?"

"माहल कलाँ से।"

"ओह ! किसके घर से ?"

"बाबूलाल के घर से।"

"समझ गया।"

फिर वह एकदम खामोश हो जाता। हुक्का मुँह में लिये उसे गुड़-गुड़ाता रहता। फिर नली को एक ओर सरकाकर खामोशी से सामने दीवार की ओर ताकने लगता। उसे इस तरह करते देखकर मेज़बान पूछता, "क्यों, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं," सगाई-तोड़ उत्तर देता।

"क्या सम्बन्ध ठीक नहीं ?"

"नहीं, ठीक ही है," वह इस अन्दाज़ से उत्तर देता कि जिसका मतलब साफ़-साफ़ यह होता कि ठीक नहीं है।

"क्या लड़की में कुछ कमी है ?"

"नहीं, कमी तो विशेष कुछ नहीं, केवल उसकी एक आँख खराब है, दाँत बाहर की ओर निकले हुए हैं और कभी-कभी मिरगी का दौरा भी पड़ जाता है।"

"मिरगी का दौरा !"

"लेकिन वह कुछ ऐसी बात नहीं," सगाई-तोड़ उत्तर देता। "इसका तो कभी का इलाज हो गया होता यदि उसका बाप ऋणी न होता।"

"ऋणी ! वह कैसे ?"

"कोई खास ऐसी बात नहीं। उसे ज़रा जुआ खेलने की लत है।"

"जुआ खेलने की ?"

"लेकिन वह भी कोई ऐसी अधिक नहीं। कभी-कभी खेल लेता है और तभी जब कि मदिरा पान करे।"

"क्या मदिरापान भी करता है ?"

"केवल उस दिन जब बकरा कटे।"

"तो मांस भी खाता है," वह क्रुद्ध होकर कहता। "हमारे घर तो तड़के में प्याज़ भी नहीं पड़ता।"

"परन्तु हर रोज़ तो नहीं खाता। केवल उस दिन जब बकरा चुराकर लाए।"

"राम ! राम ! राम !" लड़की का बाप कहता, "तो वह तो सब गुणों से सम्पन्न है ! अच्छा हुआ आप मिल गए। आपको भगवान् ही ने भेज दिया। नहीं तो हम फँस ही गए थे।

"और अब मैं फँस गया।"

"आप ! वह कैसे ?"

"यदि पता चल गया कि मैंने आपसे यह कहा है।"

"लालाजी क्या बात करते हो ? हमसे बात करना तो ऐसा है जैसे कुएँ में पत्थर फेंक देना। हमारे कान में जो बात पड़ती है बाहर नहीं निकलती। फिर आपने तो हमारे भले की ही बात की है।"

"लालाजी, हम तो यह जानते हैं कि कर भला हो भला। अच्छा, अब आज्ञा दीजिए।"

"आज्ञा ! अभी से ! खाना खाये बिना आप भला कैसे जा सकते हैं ?"

"धूप चढ़ आएगी।"

"शाम को चले जाना ! कौनसा दूर है।"

खाने के समय लड़के के लिए लड़की की बात फिर चल निकलती।

सगाई-तोड़ ने जेब से एक फोटो निकालकर मेजबान को दिखाई। उसे देखकर वह फड़क उठा और बोला—

"बहुत सुन्दर ! ऐसी लड़की बहू बनकर आए तो बात भी है।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

"लेकिन लड़की का बाप·····"

"आपकी सेवा में उपस्थित है।"

"अच्छा तो आप·····"

"·····का दास।"

"अरे लालाजी, हमारे सिर के मुकुट।"

और विवाह हो जाता। सगाई-तोड़ वही चित्र अपनी हर लड़की के लिए वर ढूँढ़ते समय दिखलाता और केवल लड़के के पिता को। वह बहुत सुन्दर चित्र था, किसी सिनेमा-अभिनेत्री का। चित्र को दिखलाकर वह जेब में रख लेता। लड़के का बाप, दो हाथ घूँघट वाली बहू को देख ही न सकता था।

सगाई-तोड़ ने द्रौपदी के साथ भी यही खेल खेला और कई स्थानों से सम्बन्ध तुड़वा दिए। द्रौपदी के बाप को एक और लड़के की सूचना मिली। उसकी चचेरी बहन का पति एक बड़ा अधिकारी था। संयुक्त कुटुम्ब में ऐसा अधिकारी बड़े काम की चीज़ होता है। एक वह कमाता है, पचास खाते हैं। दूर-दूर के निखट्टू सम्बन्धी उसके पास पड़े उसकी रोटियों पर पलते हैं और उसके इशारों पर नाचते रहते हैं। उसी तरह का एक लड़का मानकलाल, अपने सम्बन्धी अधिकारी के पास पड़ा रहता था। द्रौपदी के पिता ने अपनी बहन से उसके विषय में कहा। बहन ने अपने पति से, और उसने मानकलाल को आदेश दिया कि उसका विवाह द्रौपदी से होगा।

विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। मानकलाल के पास पैसा होने का तो प्रश्न ही न था। विवाह फिर भी हो गया। सम्बन्धी अधिकारी का और लाभ भी क्या ? उसका नाम था रामलाल। रामलाल स्वयं भी

बारात के साथ गया। घर पर बहू आई। लोगों में शादी की चर्चा हुई।

"मानकलाल के भाग्य खुल गए।"

"रामलाल का धन्यवाद करे जो विवाह हो गया।"

"नहीं तो आयु-पर्यन्त कँवारा रहता।"

"भला ऐसे निखट्टू से अपनी लड़की का कौन विवाह करता ?"

"कोई सम्बन्धी अधिकारी हो तो कितना लाभ है ?" एक कँवारा आह भरकर बोला।

"अरे भाई, कर्मों का खेल है," उसका दूसरा साथी बोला।

"पचास वर्ष की आयु हो गई है, अपना हल जोतता हूँ, लेकिन कोई साला लड़की देने की बात तक नहीं करता।"

"अरे भई, लड़कियों का अकाल है," पहला कँवारा बोला।

"केवल हमारे लिए," दूसरे ने आह भरकर कहा।

उधर 'नारी-समिति' में यही बात चर्चा का विषय थी।

"बहन ! बहू को देखा ?"

"हे भगवान् !" दूसरी बोली।

"बेचारे के साथ बड़ा अन्याय हुआ," तीसरी ने कहा।

"परन्तु बहन ! सुहागवती (रामलाल की पत्नी) ने तो बहू को देखा था।"

"देखा था ! उसकी भतीजी है।"

"तो फिर मानकलाल से उसने किस पाप का बदला लिया ?"

"वह कितना सुन्दर है !"

"और पत्नी शूर्पणखा।"

"अरी बहन ! देखी तो किसी ने नहीं, परन्तु शूर्पणखा इतनी कुरूप कभी न होगी।"

"असल में जब भगवान् रूप बाँट रहा था, यह कहीं चली गई होगी।"

सब अट्टहास से हँस पड़ीं।

"और सुना बहन !" एक अधेड़ अवस्था की स्त्री ने, जो सगाई-तोड़ की बहन थी, हाँफते-हाँफते आकर कहा।

"क्या बहन क्या ?" सब एकदम चिल्ला उठीं।

"अनर्थ हो गया बहन," वह माथे पर हाथ मारते हुए बोली। सब स्त्रियों ने दम साध लिया और खबर सुनने के लिए उत्सुक हो उठीं।

"मानकलाल आज दूसरे कमरे में सोया।"

"दूसरे कमरे में !" अपने दिलों पर हाथ रखकर और साँस छोड़-कर सब एक साथ बोलीं।

"और बहू ?"

"सारी रात रोती रही।"

"और बेचारी क्या हर्ष से नाचती ?"

"बहन, यदि मेरा पति पहली रात मुझसे ऐसा व्यवहार करता, तो मैं आयुपर्यन्त उससे न बोलती।"

"न बोलती ! मैं तो घर से भाग जाती।"

"मैं विष खा लेती।"

"मैं तालाब में डूब मरती।"

"बहन, अनर्थ हो गया।"

"लेकिन सुहागवती कुछ न बोली ?"

"उसने आज मानकलाल को डाँटा।"

"परन्तु वह बेचारा भी क्या करे ?"

"यदि उसे एक रीछनी के साथ सोने को कहा जाय तो वह क्यों न भागे ?"

"रामलाल को नहीं पता चला ?"

"वह तो दौरे पर चला गया।"

"अब उसका काम विवाह करवाना था। सोने-सुलाने की ज़िम्मेदारी तो उसकी नहीं।"

"बहन ! ठीक तो है।"

महिला-मण्डली में प्रत्येक दिन इसी बात की चर्चा होती।

कुछ दिन बाद सगाई-तोड़ की बहन ने आकर एक और समाचार सुनाया।

"बहन ! मानकलाल घर से भाग गया।"

"कब ?"

"आज सुबह।"

"क्यों ?"

"क्यों क्या ? भागने का और कारण ही क्या हो सकता है ? कल रामलाल छुट्टी पर घर आया तो सुहागरानी ने उससे शिकायत की कि मानकलाल द्रौपदी से बात तक नहीं करता। उसने बुलाकर मानकलाल को डाँटा और कहा, 'अगर तू ने ऐसी हरकत की तो तुझे घर से निकाल दूंगा !' उस समय तो वह खामोश रहा, लेकिन अगले दिन बहुत सवेरे जब सब सो रहे थे, वह घर से भाग निकला।"

इस खबर से औरतों को न दुख हुआ न क्षोभ। हाँ, वे प्रसन्न अवश्य थीं। यह उनकी अपने पक्ष में जीत थी। अपने-अपने विवाह के पश्चात् उन्हें आज प्रथम बार ऐसा सुअवसर प्राप्त हुआ था जब वे स्वयं को उत्तम समझ सकें। उनके पति पहली रात दूसरे कमरे में नहीं सोए थे। उन्होंने तो उलटे उन्हें सोने ही न दिया था। घर से भागने की बात तो दूर, वे तो घर से बाहर भी नहीं निकलते थे। उन्हें आज अपने बड़प्पन का अनुभव हुआ।

मानकलाल घर से भागकर दूर किसी नगर में चला गया। कोई कहता वह कलकत्ता में था, कोई कहता उसने उसे बम्बई में देखा था। वह दस वर्ष तक घर नहीं आया। उसने वहाँ किसी दुकान पर नौकरी कर ली और घर न आने का निश्चय कर लिया। द्रौपदी अपनी सास के साथ रहने लगी। अब यदि सास ऐसी बहू को जिसके आने से उसका इकलौता लड़का भाग निकला, पसन्द करे, वह स्त्री नहीं, देवी होगी। परन्तु रुक्मिणी स्त्री थी। बेटे का दुःख उसे दिन-रात सताने लगा।

कितनी अशुभ घड़ी थी जब उसने इस सम्बन्ध के लिए 'हाँ' कर दी थी। अब उसने अनुभव किया कि 'हाँ' उसने नहीं, उसकी दरिद्रता ने की थी। वह आर्थिक सहायता के लिए रामलाल और सुहागरानी पर निर्भर थी। वह उनकी ही ओर तकती। उसे तो यह डर था कि कहीं लड़का आयु-पर्यन्त अविवाहित न रहे। वह पढ़ा-लिखा भी नहीं था। चौथी कक्षा भी पास नहीं कर पाया था। वह सुहागरानी की इसलिए भी खुशामद करती कि उसकी कृपा होने से उसका विवाह भी हो जायगा। वह उसकी टाँगें दबाती थी, उसकी चिलम भरती थी, क्योंकि सुहागरानी ने दूसरी स्त्रियों पर रौब जमाने के विचार से चाँदी का हुक्का बनवा रखा था। औरतें उसके इर्द-गिर्द बैठी रहतीं। रुक्मिणी देवी उसकी खुशामद करती ताकि उसके लड़के की शादी हो जाय। इसके बिना वंश का नाम कैसे जीवित रह सकेगा और जब सुहागरानी ने उसे यह खबर सुनाई थी, वह हर्ष से पागल हो उठी थी। उसके पाँव जैसे धरती पर पड़ते ही न थे। दरिद्रता में भी उसने विवाह के लिए गहने और कपड़े बनवाए। अपने गहनों को बेचकर बहू के लिए कपड़े और कुछ गहनों को तुड़वाकर उसके लिए जेवरात तैयार कराए। एक विधवा को अपने लिए आभूषणों की आवश्यकता ही क्या होती है? लेकिन उसे क्या मालूम कि यह सौदा कितना मँहगा पड़ेगा? जिस बहू को उसने इतनी मिन्नतें माँग कर पाया था, उसने उसका सारा सुख ही छीन लिया। इतनी कुरूपा कि उसका लड़का उसकी आकृति से घृणा करने लगा। वह पहली रात भी उसके पास न सो सका और तंग आकर घर से भाग निकला। इससे बढ़कर रुक्मिणीदेवी के लिए दुर्भाग्य की और क्या बात हो सकती थी? ऐसी डायन बहू घर में आई कि जिसने उसके सुखी-संसार को तबाह करके रख दिया।

द्रौपदी को सबसे पहले यह दण्ड मिला कि उसके विवाह के गहने और कपड़े ज़ब्त कर लिये गए। कुछ दिन के बाद वह वही साधारण वस्त्र पहनने लगी जो गाँव की अन्य स्त्रियाँ पहनती हैं—गरमियों में एक

साधारण सूती धोती और जम्पर, सरदियों में कम्बल, मोटी कमीज़ और शलवार। उसका चूड़ा भी उतरवा लिया गया। यह उसके लिए एक घोर दण्ड था। इसके अतिरिक्त घर का सारा काम उसके सिर पर लाद दिया गया। नई बहू से कई मास काम नहीं कराया जाता। परन्तु द्रौपदी के ये विशेषाधिकार भी छिन गए। सरदियों में वह प्रातः चार बजे उठती और आटा पीसती। फिर झाड़ू देती और बरतन माँजती। इन कामों से अवकाश मिलता तो चरखा उसकी प्रतीक्षा करता। फिर आग सुलगाती और रोटी बनाती, दाल तो कभी-कभाक बनती, वह भी मूँग या मसूर की बहुत पतली दाल; जो दो-तीन बार चल जाती। नहीं तो अनचुपड़ी रोटी पर नमक रखकर, वे उसे पानी के घूँट से नीचे उतारतीं। कभी-कभी पड़ोस से लस्सी मिल जाती तो रोटी आसानी से खाई जाती। सब्ज़ी की शकल वे रामलाल के घर जाकर ही देखतीं। यदि उनके घर आना-जाना न होता तो शायद वे सब्ज़ी का नाम तक भूल जातीं। रोटी और बरतनों से निपटने के बाद द्रौपदी फिर चरखा कातने लगती। उसकी सास भी उसके पास चरखा लेकर बैठ जाती। अँधेरा होने तक वह कातती। रात के खाने के बाद वह फिर चरखे में जुत जातीं। चरखा उनके लिए कितने काम की चीज़ था! उनके सुख-दुःख में उनका कितना सहायक था! धीरे-धीरे रुक्मिणी देवी यह अनुभव करने लगी कि आखिर बहू को क्यों कोसा जाय? इस बेचारी का क्या दोष है? भाग्य में लिखे को कौन और कैसे मिटा सकता है? उसका अपना पति भी तो युवावस्था में मर गया था, जब मानकलाल अभी बच्चा ही था। उसने अपना सारा यौवन वैधव्य में काट दिया था। उसके अपने पति का उससे बढ़कर और किसे दुःख हो सकता था? लेकिन उसके मरने में उसका क्या दोष था? वह भी द्रौपदी को दोषी क्यों ठहराए? यदि उसे अपने बेटे के चले जाने का दुःख है, तो द्रौपदी को भी अपने पति के भाग जाने का क्षोभ है। दोनों दुःख में एक-दूसरे की साथी हैं। उसे कोसने या डाँटने के बजाय उस पर दया करना अधिक

उपयुक्त है। इस प्रकार मन को समझाकर द्रौपदी ने बहू तथा स्थिति से समझौता किया।

एक दिन गाँव के एक व्यक्ति ने आकर यह बतलाया कि वह मानकलाल से नागपुर में मिला था और उसके घर ठहरा भी था। उसने अपने घर में एक स्त्री को रखा हुआ है।

"क्या वह बहुत रूपवती है ?"

"मुझे तो उसमें कहीं रूप नजर नहीं आया।"

"जात की कौन है ?"

"पूछा तो नहीं, लेकिन गोंड मालूम देती है।"

"गोंड ! राम ! राम ! यह उसे क्या सूझी ?" रुक्मिणी देवी ने कहा। "मुआ, विवाहिता स्त्री को छोड़कर गोंड-भीलों से शादी करता फिरता है !"

"शादी तो नहीं, माँजी !" रामसरन बोला, "उसका खाना बनाने आती थी, घर की मालकिन बन बैठी।"

"मालकिन ! बदजात !" रुक्मिणी क्रोधावेश से बोली। फिर नरम पड़कर कहने लगी, "अच्छा, रामसरन ! भगवान् तेरा भला करे। तू हमारे साथ नागपुर चल। मैं तुझे आने-जाने का किराया दूँगी।"

और वे तीनों नागपुर पहुँचे। घर पर वह स्त्री मौजूद थी। रामसरन ने उससे पूछा—

"मानकलाल कहाँ है ?"

"दफ़्तर गया है।"

"कब आएगा ?"

"छः बजे।"

"ओह ! लेकिन क्या तुम उसकी नौकरानी हो ?"

"नहीं, मैं....." और उसने से शरम मुँह दूसरी ओर मोड़ लिया।

"समझ गया," रामसरन बोला, "तुम जानती हो यह बीबी जी कौन

हैं ?" उसने द्रौपदी की ओर संकेत करके कहा।

"नहीं।"

"यह मानकलाल की घरवाली है।"

"घरवाली ! लेकिन वह तो कहते थे....."

"वह ग़लत कहते थे।" रामसरन ने उसे बीच ही में टोककर कहा। "और सुनो, तुम्हें घर में रखकर मानकलाल ने अच्छा नहीं किया। यदि उसके साहब को इस बात का पता चल गया तो उसे नौकरी से पृथक् कर देंगे और तुम्हें पुलिस के हवाले।"

"पुलिस के हवाले ?" वह घबराकर बोली।

"बिलकुल ! तुमने यह बहुत बुरा काम किया। अब तुम्हारे लिए एक ही मार्ग है कि तुरन्त भाग जाओ।" उसे खामोश देखकर रामसरन फिर बोला, "यदि तुम यहाँ से भागकर शहर ही में रही तो पुलिस तुम्हें नहीं छोड़ेगी। कुशल इसी में है कि अपने गाँव को चली जाओ।"

"मेरा गाँव तो दूर है। तीन रुपये छः आने खर्च करके फिर भी छः कोस पैदल चलना पड़ता है।"

"अगर तुम जाना चाहो तो हम किराया दे सकते हैं।"

"ठीक है।"

"चलो, तुम्हें गाड़ी में बिठा आऊँ।"

वह उसके साथ स्टेशन गया। अभी गाड़ी जाने में एक घण्टा पड़ा था। उसने वहीं प्रतीक्षा करना उचित समझा और उसे गाड़ी में बिठाकर ही वापिस लौटा।

शाम को जब मानकलाल घर आया तो रामसरन को देखकर हैरान भी हुआ और प्रसन्न भी और उससे बोला, "माँ का क्या हाल है ?"

"बहुत बुरा।"

"क्यों ?"

"तुम जैसा कुपूत पाकर उसका हाल अच्छा कैसे हो सकता है ? अगर तुम उससे मिलना पसन्द नहीं करते तो कभी-कभी पोस्टकार्ड ही

डाल दिया करो ।"

"क्या करूँ ? काम ही इतना होता है ।"

"लेकिन क्या कभी उसे याद नहीं करते ?"

"क्यों नहीं करता ? सच कहता हूँ उससे मिलने को मन बहुत चाहता है ।"

"अबे चल झूठा कहीं का ।"

"राम की सौगन्ध ।"

"तो फिर लो, मिलो उससे ।"

और उसके सामने उसकी माँ आकर खड़ी हो गई । वह हैरान हो गया और उसके पाँव छूकर उससे लिपट गया । माँ की आँखों में आँसू आ गए और बोली, "अरे निर्मोही ! तुम्हें शरम न आई ? जोरू से रूठकर भागा और माँ को भी त्याग दिया और एक पत्र तक न लिखा ।"

"नहीं, माँ ! काम में कुछ ऐसा जुटा रहा कि अवकाश ही न मिला ।"

"और तुम कितने निर्दयी हो कि इस बेचारी पर इतना जुल्म किया और उसे छोड़कर इस तरह भाग निकले । और नहीं तो अपने कुल ही की लाज का ध्यान रखा होता । तुमने यह नहीं सोचा कि गाँव में और सम्बन्धियों में हमारा कितना अपमान हुआ । किसी के सम्मुख हम सिर नहीं उठा सकते । यदि इस बेचारी का नहीं तो लोक-लाज ही का ध्यान रखा होता ।"

"चाची, तुम आते ही इस बेचारे के पीछे पड़ गईं । इसे खाना तो खा लेने दो ।"

"नौकरानी कहाँ गई ?" उसने पूछा ।

"कौनसी नौकरानी ? हमने तो देखी नहीं । जब हम घर आये तो कुण्डी लगी थी । हम खोलकर अन्दर आ गए ।"

खाना खाते समय वह बोला, "माँ ! इतने सालों बाद अच्छा खाना

खाया। कितना स्वादिष्ट है !"

"तुम्हारी पत्नी के हाथ का बना हुआ है।"

"वहाँ से बनाकर लाई हो ?"

"यहाँ आकर बनाया है।"

"किसने ?"

"उसी ने। अरी द्रौपदी आकर पाँव तो छू।"

उसे सामने देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया। मगर कर ही क्या सकता था ?

छः मास अपने पास नागपुर में रखने के पश्चात् मानकलाल ने उन्हें वापस घर भेज दिया। वहाँ आकर कुछ मास पश्चात् उसके लड़की पैदा हुई। सास-बहू के लिए लड़की ही गनीमत थी। कम-से-कम वे अकेली तो न रहेंगी। घर सूना-सूना नहीं लगेगा। खेलने के लिए उन्हें एक खिलौना मिल गया। अब मानकलाल कभी-कभी उन्हें पत्र भी लिख भेजता। इस लड़की के कारण उन्हें पैसे भी भेज देता। पोस्ट आफिस में भी उसने उनके नाम पैसे जमा करा दिए। लेकिन उनके रहन-सहन के तरीके में कोई अन्तर नहीं आया। वही दाल-सालन के बगैर रोटी—चक्की, चरखा, मोटे कपड़े। वे दस वर्ष तक एक ही ढंग से रहती हुई उससे इस हद तक अभ्यस्त हो चुकी थीं कि उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करना उनके बस का रोग न था। यद्यपि पोस्ट आफिस में उनका चार सौ रुपया रखा भी था, उसे खर्च करने का उन्हें साहस ही न होता था। एक तो आदत नहीं थी, दूसरे उन्हें यह चिन्ता थी कि खर्च करने से रुपया घटेगा और घटते-घटते समाप्त हो जायगा, क्योंकि यह आवश्यक नहीं था कि मानकलाल उन्हें फिर से रुपया भेजे। इस पर लड़की के विवाह की चिन्ता भी अभी से करनी चाहिए। यह जी को सुखाने वाली चिन्ता नहीं थी। इसमें आने वाले जीवन की झलक थी। लड़की के पालने-पोसने में व्यस्त रहेंगी, तो जीवन इतना शुष्क नहीं रहेगा।

अब मानकलाल साल-भर में दस-बारह दिन के लिए कभी-कभी

घर भी आ जाता। द्रौपदी के लिए ये दस दिन त्यौहार के दिन होते। वह दिन में एक पल के लिए भी आराम न करती। उसे हर समय यही चिन्ता रहती कि वह पति की सेवा कर सके। इन दिनों की याद हृदय में सुरक्षित रखती और उसके चले जाने के बाद, इन दिनों की याद ताज़ा करके मन को बहलाती। लेकिन उनके रहन-सहन में कोई अन्तर नहीं आया। उनकी बच्ची शोभा बड़ी होकर युवावस्था में प्रवेश कर गई। उसके विवाह का प्रश्न पैदा हुआ। मानकलाल शादी करने एक मास के लिए घर आया और फिर वापस चला गया। लड़की की विदाई के समय द्रौपदी और उसकी सास धाड़ें मार-मारकर रोईं। उनका रोना दिल से निकलता था। शोभा के चले जाने के बाद उनके जीवन में फिर वही नीरसता और शुष्कता आ गई। घर में फिर वही उदासी छा गई। दिन फिर पहाड़ की तरह लम्बे मालूम होने लगे। रातें सूनी हो गईं। उन्हें किसी से पता चला कि मानकलाल ने नागपुर में फिर अपना घर बसा लिया है। वही औरत फिर उसके पास आ गई है। अब उसकी गोद में लड़का है जिसे मानकलाल खूब प्यार करता है।

लड़के की ख़बर सुनकर उन्हें बड़ी खुशी हुई। रुक्मिणी ने उसे लिखा कि यदि वह लड़के के साथ घर आए तो बहुत अच्छा हो। उनका उसे देखने को बहुत जी चाहता है। लेकिन मानकलाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे अपनी पत्नी पर कोई तरस नहीं आया। माँ कहती, "मेरी बहू असुन्दर सही, लेकिन उस गोंड डायन से तो अच्छी है। फिर उस कुलटा से मुक़ाबला ही क्या ?" लेकिन उसके कहने से क्या हो सकता था ? बात तो मानकलाल की थी।

उनकी उदासी कुछ दिनों के लिए शोभा के आने ही से दूर होती। वह कभी-कभी ससुराल से आती और एक-दो मास वहाँ रहकर चली जाती। अधिक समय वह कैसे रह सकती थी ? उसके पति को उसकी ज़रूरत थी। उसके एक लड़की थी, सबकी चहेती। कभी-कभी तो द्रौपदी अपनी लड़की से प्रतिस्पर्धा करने लगती। उसका पति उसे कितना प्यार

करता है। जब वह दो मास के लिए मैके आती है, उसे सप्ताह में दो बार पत्र लिखता है। कितने प्यार-भरे होते हैं वे पत्र। इधर वह है जिसके पति ने इतने लम्बे जीवन में उसे एक शब्द भी नहीं लिखा, जिसे उसने दो-चार बार से अधिक बुलाया भी नहीं। वह उसकी ज़बान से एक शब्द सुनने तक को तरसती रही। उसके जीवन की सबसे बड़ी उत्कण्ठा यही रही कि उसका पति एक बार तो मुस्कराकर उससे प्यार की बात कर ले। मगर उसकी यह इच्छा कभी पूरी न हो सकी। उधर उसका दामाद, उसकी लड़की से किस तरह हँसकर, खुलकर बात करता था। जब वह कुछ दिन के लिए लड़की को लेने या छोड़ने आता, उससे किस प्रकार व्यंग करता। द्रौपदी को खुशी तो अवश्य होती। शोभा उसकी अपनी लड़की थी। लेकिन साथ ही उसकी छाती पर साँप लोट जाता। शोभा उसकी कोख से जन्मी थी, लेकिन उसकी ज़िन्दगी माँ की ज़िन्दगी की तरह शुष्क और नीरस नहीं थी। उसका जीवन कितना आनन्दमय था। प्यार के बग़ैर वह पूर्ण हो ही कैसे सकता है। उसे जीवन कह ही कैसे सकते हैं? उसका जीवन, जीवन कहाँ था? उसे जीवित प्राणियों में सम्मिलित कैसे किया जा सकता है? उसका जीवन पशुओं से भी निकम्मा था। पशुओं पर भी यौवन आता है। वे भी प्यार करते हैं। परन्तु यहाँ तो प्यार का प्रश्न ही न उठता था। पन्द्रह-बीस वर्ष में पाँच-सात बार मुलाक़ात और उसमें भी न प्रेम का अंश न प्यार की बात। उसकी ज़िन्दगी एक काली लम्बी रात थी। जिसमें प्रकाश-रेखा की कोई आशा न थी। जीवन-धारा एक ही प्रकार बहे जा रही थी। हर रोज़ वही घर, वही वातावरण, वही नीरसता और शुष्कता। सुख का लेश-मात्र भी नहीं। फिर सबसे बड़ी बात यह कि कहीं से कोई सहानुभूति नहीं। उसकी भूख को महसूस तक नहीं करता। कोई उसके सूनेपन की थाह लेने की कोशिश नहीं करता। पड़ोसी और मुहल्ले वाले कभी-कभार पत्र आने पर पूछ बैठते हैं, बस यों ही ऊपर के दिल से—

"शोभा की माँ! क्या नागपुर से पत्र आया है?"

"नहीं, शोभा का है।"

वे यों ही पूछ बैठतीं, कुछ बात करने के लिए। उनके मन में यह विचार तक न पैदा हो सकता था कि उनका यह साधारण प्रश्न द्रौपदी पर क्या आपत्ति ढा देगा। वह पत्र को लेकर अन्दर आ जाती और सिर-दर्द का बहाना करके लेट जाती। उसके दिल पर दुखपूर्ण शक्ति से छा जाता, उदासी अपनी पूरी सेना लेकर आक्रमण कर देती। उसका दिल इस वार को कैसे सहन कर सकता। वह आँसुओं को सहायता के लिए बुलाती और उनका सहारा लेकर पीड़ा और क्षोभ को आँखों के रास्ते बाहर निकालती। लेकिन उन आँसुओं की कीमत ही क्या थी? वह सुना करती थी कि ऐसी स्त्रियाँ भी होती हैं जिनका एक आँसू बहने पर भी उनके प्रियतम अपनी जान तक न्योछावर करने को उद्यत हो जाते हैं। उनके एक आँसू तक का कितना मोल होता है। और यहाँ आँसुओं की नदियाँ बह जायँ तो कोई परवाह नहीं। कोई पूछने वाला नहीं। प्रति-वर्ष दीवाली से पूर्व स्त्रियों का एक विशेष त्यौहार आता। हर एक विवाहिता नारी अपने पति की कुशल-मंगल जानने के लिए व्रत रखती। इस करवा चौथ के व्रत की उनके जीवन में कितनी महत्ता होती। कई दिन पूर्व वे उसकी प्रतीक्षा करतीं। नये कपड़े सिलते। माँ-बाप अपनी लड़कियों को गहने और कपड़े, मिठाई और पैसे भेजते। एक दिन पहले बाज़ार से फल और फेनियाँ आतीं। मिठाइयाँ मँगवाई जातीं। प्रातः तीन-चार बजे उठकर वे सर्गी खातीं। दिन चढ़ने पर नहा-धोकर, सुन्दर वस्त्रों और गहनों से सुसज्जित होकर, वे एक दूसरी के घर मिलने जातीं। गहनों और कपड़ों के साथ उनकी अपनी भी प्रदर्शिनी होती। नवयुवक अपने दिलों को थामकर बाज़ार में बैठ जाते और चलते-फिरते सौन्दर्य को देखकर लम्बी-लम्बी आहें भरते। उनका यही सौभाग्य क्या कम था जो उन्हें आहें भरने का सुअवसर मिलता। न जाने कब से ये दबी पड़ी थीं। स्त्रियों के गिरोह की टोलियाँ मिलकर जुआ खेलतीं। आज के दिन जुआ खेलना बहुत ही शुभ समझा जाता। मेहंदी से रँगे

हुए हाथों से वे कौड़ियाँ फेंकतीं। जितना आनन्द जीतने में आता, उतना ही हारने में। बात तो खेल-कूद की थी, हँसी-मजाक़ की, नाच-गाने की। जब वे जुए से उकतातीं, गाना और नाचना शुरू कर देतीं। ढोलक पर गीत गाए जाते। माहिए की आवाज़ बुलन्द होती—

दो पत्तर अनारां दे
साडी गली आ माहिया, दुख जान बिमारां दे।

माहिये की धुन सुनकर उनके दिलों के तार बज उठते और उस रात जब वे अपने माहिये से मिलतीं, उनमें नई उमंग जाग उठती। उनके विवाह की स्मृति ताज़ा हो जाती, और ऐसा लगता कि वे अपने विवाहित जीवन को फिर से आरम्भ कर रही हैं। और द्रौपदी? द्रौपदी भी व्रत रखती, सुबह उठकर सर्गी खाती, नये कपड़ों और गहनों से शरीर को सजाती। लेकिन दिल? दिल पर वही उदासी छाई होती। वह अपने सुहाग की खैर मनाती। पति के दीर्घ आयुष्मान् होने की प्रार्थना करती। परन्तु उसकी प्रार्थना पति के सोये हुए प्रेम को न जगा सकती। वह स्त्रियों के साथ मिलकर जुआ खेलने का ढोंग रचती। उनका नाच देखती। जब वे गाना गातीं, उसका दिल रोता, चुपके-चुपके, धीरे-धीरे। माहिये की याद ताज़ा करके उनका दिल हिलोरें ले उठता। उनमें आशाएँ नाचने लगतीं, उम्मीदें मचल उठतीं। और यहाँ? यहाँ तो अभिलाषाओं का उद्यान उजड़कर रेगिस्तान बन चुका था। क्या मरुस्थल में पुष्प-वाटिका लग सकती थी? क्या उसमें बसंत आ सकता था? शायद इस जीवन में तो यह असम्भव था। रात को जब दूसरी स्त्रियाँ गहनों और कपड़ों से सज-धजकर अपने प्रियतमों के दिल को लुभाती थीं, द्रौपदी अपने आँसुओं से अपना दामन भिगोए अपने पति को याद करती। वह अपने को धन्य मानती कि विरह की इस लम्बी रात में आँसू तो उसके सहायक हैं। और यदि वे भी संग छोड़ जायँ तो?

और तब उसकी सास ने उसका संग छोड़ दिया। सारा यौवन मृत पति की स्मृति में व्यतीत करने और आयु के अन्तिम बीस वर्ष जीवित

और इकलौते पुत्र की याद में बिताने, आयुपर्यन्त रूखी-सूखी खा और फटा-पुराना पहनने के बाद आखिर बुढ़िया चल बसी। सारा जीवन उसने दरिद्रता में पैसे और प्यार के बग़ैर काटा। पड़ौसी गाय और भैंस पालते, वह सूखी, अनचुपड़ी रोटी ही को ग़नीमत जानती। दूसरी स्त्रियाँ रेशमी वस्त्र भी पहनतीं, वह मोटी खादी पहनकर भगवान को सराहती। उसकी सारी जिन्दगी, रेगिस्तान की एक लम्बी, ख़त्म न होने वाली यात्रा थी, जहाँ हरियाली मिलने की आशा होते हुए भी वह इसे पूरा न कर सकी। अपनी इस लम्बी यात्रा में उसे अपनी बहू का साथ मिल गया जो बीस वर्ष तक उसकी सहयात्री रही। उसके जीवन का एक उज्ज्वल अंग यह था कि उस अकेली को यात्रा नहीं करनी पड़ी। परन्तु द्रौपदी को वह रेगिस्तान की तपती धूप में किसी सहायता और सहारे के बिना अकेली छोड़ गई। मार्ग लम्बा था और वह इतना भी नहीं जानती थी कि इसका अन्त कहाँ होगा। मन्ज़िल का तो उसे चिह्न-मात्र भी मालूम न था। फिर यात्रा कितनी दुर्गम थी, विशेषतः सास की मृत्यु के पश्चात्।

माँ के मरने पर मानकलाल घर नहीं आया।

"बहन! मानकलाल नहीं आया?"

"उसका पत्र आया है।"

"लेकिन माँ की मौत पर तो उसे स्वयं आना चाहिए था।"

"कहता है छुट्टी नहीं मिली।"

"उस डायन से?"

"दफ्तर से।"

"क्यों लाट बन गया है?"

"बहन, लाट क्या, वह अपने-आपको कलक्टर समझता है।"

"इतनी अकड़ तो थानेदार में भी नहीं होती।"

"लेकिन बहन, माँ के मरने पर तो थानेदार भी घर आते होंगे।"

"अरी, होते तो वे भी मनुष्य हैं न!"

"देखो न बहन ! रामलाल कितना बड़ा अफसर है। पाँच सौ पाता है। लेकिन माँ के और बाप के मरने पर एक-एक मास की छुट्टी लेकर आया था। उसे तो छुट्टी मिल गई, मानकलाल को न मिल सकी।"

"न बहन ! ऐसी सन्तान से तो स्त्री बाँझ ही भली।"

"ऐसे लड़के का तो पैदा होते ही गला घोंट दे।"

"नहीं तो वह माँ-बाप और जोरू का ही गला घोंट देता है।"

सास की मृत्यु के समय यद्यपि द्रौपदी की आयु लगभग पैंतीस वर्ष की थी, लेकिन एक वर्ष के अन्दर वह पचास वर्ष की दिखलाई देने लगी। उसके सिर के बाल एकदम सफेद हो गए। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं और वह बूढ़ी मालूम होने लगी। पति के विरह ने जो थोड़ी-बहुत कमी छोड़ी थी, वह सास की जुदाई ने पूरी कर दी। एक आश्रय था वह भी छूट गया, एक सहारा था, वह भी टूट गया। यद्यपि वे एक-दूसरी से अधिक बात नहीं करती थीं, एक दूसरी को समझती तो थीं। उनके दिल एक-दूसरे को पहचानते थे, खामोश रहते हुए भी वे बातें करते थे। दोनों एक-दूसरे का सहारा थीं। बीस वर्ष से एक ही छत के नीचे रहते हुए, एक-दूसरी को समझने लग गई थीं। सरदियों की लम्बी, विरह की कटु, पहाड़-जैसी रातें, द्रौपदी ने उस छत के नीचे, सास के साथ काट दी थीं। गरमियों के लम्बे दिन और जलती रातें भी वह उसके सहारे ही काट सकी थी, और अब ? अब वह क्या करेगी ? इस प्रश्न के पैदा होते ही वह काँप उठी। दादी की मृत्यु पर शोभा आई तो अवश्य, परन्तु शीघ्र ही वापस चली गई। अपनी ससुराल के आनन्द-मय जीवन को छोड़कर, वह अपनी माँ के फीके और नीरस जीवन में क्या सुख पाती ? वह जानती थी कि अब इस घर में वसन्त आने का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ तो पतझड़ के पश्चात् पतझड़ ही आयगा। अमावस की लम्बी रात में चाँद कभी नहीं चमकेगा। अगर माँ के जीवन में विरह और एकान्त, दुःख और दर्द भरा है तो वह अपने जीवन को कटु क्यों बनाए ? दूसरी लड़कियाँ अपने माता-पिता के घर इसलिए भी

आती थीं कि उन्हें कुछ-न-कुछ मिलने की आशा रहती। लेकिन उसे यहाँ किसी प्रकार की कोई आशा न थी। द्रौपदी ने उससे कहा कि वह अपनी लड़की कुसुम ही को उसके पास छोड़ दे। कुसुम को ? भला उसे वह कैसे छोड़ सकती थी। उसकी पढ़ाई में हरज न होगा ? दूसरे, कुसुम अपने पिता और दादी की चहेती थी। उसे वे एक दिन के लिए भी आँखों से ओझल नहीं करना चाहते थे।

"ठीक तो कहती हो," द्रौपदी एक दीर्घ निश्वास छोड़कर कहती।

और उसके जीवन में अब इन साँसों के अतिरिक्त और था ही क्या ? सबसे अधिक दुःख की बात तो यह थी कि अब उसका दर्द आँसू बनकर न बहता। आँसुओं का सोता भी सूख गया और ग़म एक ठोस सिक्के का ढेला बनकर दिल में जम गया। आँखों के समान बाल भी खुश्क रहते और चेहरा भी। खाना दोनों समय तो पहले भी न बनता था, अब प्रत्येक दिन भी न बनता। पहले सास के साथ बैठकर चरखा कातती थी, अब चरखे पर धूल की तहें जम रही थीं। पहले वह तालाब पर जाकर कपड़े धोती, अब उसकी भी ज़रूरत महसूस न करती थी। सास के मरने से उसका जीवन और भी दुःखमय हो गया। पति के विरह के बावजूद यदि वह जीवन को जीवन नहीं समझती थी तो मौत भी नहीं समझती-मानती थी। अब वह इसे मौत से भी खराब महसूस करने लगी। उसे अपनी सास पर क्रोध आने लगा। वह उससे प्रतिस्पर्धा करती। वह ज़िन्दगी में कभी भी अकेली नहीं। पहले वह अपनी सास के साथ थी, फिर बहू के। उसे अपने पति का प्यार मिला और लड़के को जन्म दिया। उसके पति का प्यार उसकी मृत्यु के साथ समाप्त हुआ, और यहाँ कभी मिला ही नहीं। उसका अपना पति जीवित होते हुए भी उसके लिए जीवित नहीं था। यदि पति का प्रेम पाकर वह सास के समान विधवा हो जाती, तो ज़िन्दगी इतनी कटु न रहती। उसके दिल में उस प्यार की याद तो सुरक्षित रहती। उस याद के सहारे वह जीवन की काली और भयानक रातें आराम से काट देती। गाँव में और कितनी

ही विधवाएँ मौजूद थीं, लेकिन उनका जीवन इतना दुखमय नहीं था। कोई बच्चों की माँ थी और किसी के पोते और नाती थे। कुछ अपने माँ-बाप के पास रहती थीं और शेष सास-ससुर के साथ। उनमें से कोई भी तो उसकी तरह अकेली जीवन-यात्रा नहीं कर रही थी। किसी की ज़िन्दगी भी तो इतनी नीरस नहीं थी।

उसकी दशा को देखकर लोगों ने रामसरन से मानकलाल को पत्र लिखवाया कि यदि उसने द्रौपदी की उपेक्षा की तो उसकी ज़िन्दगी खतरे में है। दो मास तक उसका कोई उत्तर नहीं आया। दूसरे पत्र के उत्तर में उसने पचास रुपये भेजे। किन्तु द्रौपदी ने मनीआर्डर लेने से इन्कार कर दिया। मानकलाल पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। उसने अपने कर्तव्य का पालन कर दिया था। यदि वह स्वयं आता तो कम-से-कम डेढ़ सौ रुपया खर्च करता। मुफ्त में रेलवे वालों की जेबें भरता। दस-पन्द्रह दिन व्यर्थ नष्ट करता। उसे अवकाश ही कहाँ था? पहले तो दफ्तर से देर से लौटता। फिर घर पर बच्चे और उसकी माँ की देख-भाल करनी होती। द्रौपदी जवानी ही में उसके काम की न थी। अब उसे क्या करे?

द्रौपदी सोचती कि माता-पिता को मरे हुए कई वर्ष बीत गए हैं। भाई है, लेकिन इतनी बड़ी गृहस्थी होते हुए उसकी भावज अपने ऊपर आपत्ति क्यों लादने लगी? लड़की के ससुराल वाले उसे मैके भेजते नहीं थे। शोभा का अपना मन भी न चाहता कि वहाँ आए। रामलाल और सुहागवती का भी देहान्त हो चुका है। गाँव वाले हैं कि उसकी परवाह ही नहीं करते। उन्हें अपने कामों से कब छुट्टी मिलती है! इतने बड़े संसार में वह अकेली रह रही है। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो उसका दुखड़ा समझ सके, उसके घाव पर मरहम रख सके। काली भयानक रात में वह बिलकुल अकेली यात्रा कर रही है। उसकी सास बीस वर्ष उसका साथ देकर उसे अकेली छोड़कर चली गई थी। बुढ़ापे में उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए उसे तो बहू मिल गई थी, लेकिन उसकी

अपनी कौन सेवा करेगा ? अब तो वह चल-फिर सकती है, लेकिन बुढ़ापे में क्या होगा ? वह यही सोचती। यही विचार उसे परेशान करते। उसके मस्तिष्क में यही ख़याल चक्कर काटते। रात को उसे नींद न आती। अगर आती तो वह सोते में भी जाग उठती। वह सोचती कि जब इस संसार में किसी को उससे सहानुभूति नहीं, कोई उसका सहायक नहीं, तो वह जीवित ही क्यों है ? अब इस संसार में उसे क्या आकर्षण है ? उसके खुश्क और सफ़ेद बाल बिखरे पड़े रहते और उसकी आकृति को और भी भयानक बना देते। वह सारा-सारा दिन खोई-खोई-सी रहती। उसकी इस अवस्था को देखकर पड़ोस की स्त्रियों को चिन्ता हुई। जब द्रौपदी ने स्वयं खाना-पकाना छोड़ दिया वे उसे खाना दे जातीं। रामसरन ने मानकलाल को कई पत्र लिखे कि द्रौपदी की दशा चिन्ताजनक है। लेकिन उसे उत्तर देने का अवकाश ही कहाँ था ? उसे दफ़्तर से फ़ुरसत ही कहाँ मिलती थी ? फिर अब उसके दो बच्चे थे। 'पत्नी' और बच्चों को छोड़कर उतनी दूर घर कहाँ जाय ? आने-जाने का किराया कौन कम लगता था ?

द्रौपदी चारपाई से चिपक गई। लेटे-लेटे वह छत की ओर ताकती रहती—गुम सुम। गाँव वालों ने सोचा कि पोस्ट आफ़िस से उसका रुपया निकालकर उसका इलाज कराया जाय। लेकिन पता चला कि जब पिछली बार मानकलाल घर आया था, सब रुपया निकालकर ले गया था। रामसरन ने शोभा को पत्र लिखा। उसके ससुर का उत्तर आया कि उसके बच्चा होने वाला है। इन खबरों से द्रौपदी का कोई सम्बन्ध न था। वह तो चुपचाप छत की ओर देखती रहती। घर के दरवाजे खुले पड़े रहते। पड़ोसिनें उसके लिए खाना रख जातीं तो कुत्तों और बिल्लियों के काम आता।

द्रौपदी हर समय खाट पर लेटी, छत की ओर ताकती रहती जैसे कोई ऊपर से आने वाला है। अथवा शायद वह अपने-आप जाने का मार्ग ढूँढ़ रही है।

तबादला

Puran Chandra Pande, M.L.C.,
5/6/56

तबादला

मेरा तबादला डलहौज़ी को हुआ तो मित्रों, परिचितों तथा सम्बन्धियों के धन्यवाद के पत्र आने लगे। प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेने के हेतु मैं बहुत दिनों से डलहौज़ी पर स्थानान्तरण का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु अपने मकान के दरवाज़े के बाहर लाला छम्मनशाह को देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। आज पूरे छः वर्ष पश्चात् उनके दर्शन कर पाया था। लाहौर से जब भारत आए थे तो उन्होंने मेरे साथ साझे में व्यापार किया था। चार हज़ार रुपया उन्होंने डाला था और आठ हज़ार मैंने। न जाने कैसे-कैसे आठ हज़ार की रक़म मैंने इकट्ठी की थी। छम्मनशाह के इस परामर्श से मैं पूर्णतया सहमत था कि ज़्यादा पढ़ा-लिखा आदमी वैसे भी बिज़नेस में एक्टिव काम नहीं कर सकता और फिर जब एक अनन्य मित्र साथ हो तो मुझे प्रतिदिन लेखे-जोखे में सिर खपाने की ज़रूरत भी क्या है? अतः उन्होंने व्यापार सँभाला और मैंने उनके परामर्श के अनुसार नौकरी कर ली।

छम्मनशाह के पत्रों से मुझे पता चला कि दुकान खूब चल रही है और बारह हज़ार के बावन हज़ार बन गए हैं। यदि इसी गति से काम चलता रहा तो कोई कारण नहीं कि बावन हजार के बावन लाख न हो जायँ। उनके पत्रों से मुझे एक नई चिन्ता ने घेर लिया। इस रुपये को किस प्रकार खर्च करूँगा? बहुत परामर्श के पश्चात् यह निश्चय कर पाया कि दार्जिलिंग में एक कोठी बनाऊँ, एक दिल्ली और एक बम्बई

में। कार तो आवश्यक है ही। परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण विदेश-यात्रा है। विदेश-यात्रा के पश्चात् देश-पर्यटन भी उचित था। इन आवश्यक बातों का एक-दो दिन में निर्णय करना असम्भव था। कई मास सोच-विचार में व्यतीत हो गए।

अचानक एक दिन छम्मनशाह का पत्र आया कि फ़र्म का दिवाला पिट गया है और फिर वह लापता-से हो गए। किसी ने खबर दी कि वह उदास होकर देश छोड़ने का इरादा कर रहे हैं। किसी ने कहा कि उन्होंने सब-कुछ बेचकर जालन्धर माडल टाउन में पचास हज़ार की लागत से एक कोठी बनवाई है और कार भी खरीदी है। धीरे-धीरे मैं उन्हें तो भूल गया, लेकिन मुझे आठ हज़ार के ऋण की चिन्ता सता रही थी। वेतन कम था फिर भी मैंने उसमें से ऋण चुकाने की क़िश्तें निश्चित कर दी थीं। डलहौज़ी पहुँचने के बाद भी मैं ऋण से पूर्णतया छुटकारा नहीं पा सका था।

आज इतने दिन के बाद छम्मनशाह को अपने मकान के बाहर खड़े देखकर मैं विस्मित क्यों न होता? फिर जब वह पहले से शरीर में दुगुने भी हो गए थे। मुझे देखते ही उन्होंने आगे बढ़कर अपनी फूली हुई बाँहों में मुझे लपेट लिया और हर्षबाहुल्य से बोले—

"ऐ ज़ौक किसी हमदमे देरीना का मिलना
बेहतर है मुलाकाते मसीहा ओ खिज़र से।

अरे भाई, हम तो मुसीबत में फँसे रहे और तुमने भुला ही दिया। राम सौगन्ध, सच कहता हूँ, कई बार तुम्हारी याद आई, लेकिन उलझनों से अवकाश ही न मिला। कल जालन्धर में योगध्यान जी से पता चला कि तुम यहाँ हो। अब भला तुमसे मिले बिना चले जाना कैसे सम्भव था? लेकिन तुम इतने दुबले क्यों हो रहे हो? क्या मालिश और व्यायाम का प्रोग्राम बन्द है? खैर! कोई बात नहीं, सब ठीक हो जायगा। तुम्हारी देखभाल मुझे फिर से करनी होगी और फिर यदि पहाड़ पर आकर स्वास्थ्य न बना तो क्या रेगिस्तान में बनेगा?"

उनके इस भाषण के उत्तर में मुझे एक रूखी-सी हँसी प्रस्तुत करनी पड़ी। वह फिर कहने लगे—

"राम सौगन्ध, सच कहता हूँ। मौसम का बड़ा फ़रक है। नीचे तो जैसे आग लगी हुई हो। इतनी सख्त गरमी कि कुछ खाने को मन ही नहीं होता। डलहौज़ी के क्या कहने हैं! कितना उत्तम जलवायु! ऐसा सुन्दर मौसम! भूख भी तो यहाँ खूब लगती होगी।"

छम्मनशाह की भूख से मैं खूब परिचित था। एक जून के लिए उन्हें सेर-भर आटा, सेर दही, बहुत-सी सब्ज़ी तथा मांस चाहिए था। लेकिन खाना बनने में बहुत देर लगती, इसलिए तब तक चाय ही क्यों न पी लें।

"खैर, तुम्हारी इच्छा," वह बोले। "तुम्हारा नौकर कहाँ है?"

मैंने पुकारा तो वह अन्दर से आया। छम्मनशाह बिना किसी संकोच के बोले—

"देखो भाई! एक दर्जन अण्डे, आध सेर गुलाब जामन, गाजर का हलवा, बारह समोसे, नहीं, नहीं, आठ-दस ही चल जायँगे। सेर-भर दूध, मलाई, वाला। बस, इस समय नाश्ते के लिए बहुत है। किन्तु शीघ्र ही।"

मुन्शी, हमारा नौकर, आँखें फाड़े, छम्मनशाह का मुँह ताकता रह गया और उसने अर्थपूर्ण नज़रों से मेरी ओर देखा।

"अरे देखते क्या हो? जल्दी करो न!" अतिथि बोले।

"जी!"

"देखना भाई! अण्डे कच्चे ही लाना। हम कोई शहर के बाबू तो हैं नहीं।"

नाश्ता करने के बाद छम्मनशाह ने चाय का प्याला पिया। उसके बाद दो घण्टे डटकर सोए। फिर स्नान किया। दोपहर का खाना खाया। आराम फ़रमाने के बाद चाय की ज़रूरत हुई और घूमने निकले। एक घण्टे बाज़ार का और गर्म और ठण्डी सड़क का चक्कर काटने के बाद,

रीगल होटल के सामने रुककर बोले, "आओ, ज़रा बैठकर गप लगाएँगे।"

मैं घबरा गया।

"देर हो जायगी। सात बज रहे हैं। घर पर हमारी प्रतीक्षा हो रही होगी।"

"आध घण्टे में क्या देर होगी," वह बोले। और मेरा हाथ पकड़कर मुझे होटल के अन्दर ले गए। हम एक छोटे कमरे में कुरसियों पर जा बैठे।

दो मिनट बाद वह उठे और 'अभी आया' कहकर चले गए। जब वह कुछ देर बाद लौटकर आए, उनके पीछे-पीछे होटल का बैरा स्काच की आधी बोतल, सोडे की दो बोतलें और शीशे के दो गिलास लिये चला आ रहा था।

"मैं तो नहीं पीऊँगा," मैंने तुरन्त घबराकर कहा।

"फूलिश!" वह सिर हिलाकर बोले, "राम सौगन्ध, सच कहता हूँ तुम सदा ब्रह्मचारियों की-सी बातें करते हो। अगर पहाड़ पर आकर भी एक पेग न लगाया तो और कहाँ लगाओगे?"

"जहन्नुम में," मैंने जलकर कहा।

"वहाँ ह्विस्की नहीं मिल सकती," कहकर उन्होंने उसे दो गिलासों में उँडेल दिया।

"आज मेरे कहने से यह एक पेग।"

"कल तुम कहोगे कि तुम्हारे कहने से विष पी लूँ।"

"कल की चिन्ता करके आज का मज़ा क्यों खोते हो?"

"मैं तो इस अग्नि का स्वाद चखने को तैयार नहीं हूँ।"

"कुछ नहीं यार, तुम लोग भला जीवन का क्या आनन्द ले सकते हो? लेकिन अगर तुम पीने को तैयार नहीं होते तो सोडे की क्या आवश्यकता है?"

यह कहकर छम्मनशाह ने एक गिलास उठाया और उसे गटागट पी गए। फिर दूसरा गिलास मुँह को लगाया और उसे एक ही साँस में

खाली कर दिया। पानी पीने में कुछ अधिक ही देर लगती होगी।

"राम सौगन्ध, सच कहता हूँ, मजा आ गया।"

और दस मिनट इधर-उधर की बातें करने के बाद फिर तीसरा पेग। आधी बोतल खत्म हो गई। "आइए, चलें।"

"लेकिन, इसका बिल...." मैंने जेब में हाथ डालते हुए कहा।

"अरे यार, क्यों लच्चर बातें करते हो? आओ चलें।"

चलते-चलते उन्होंने होटल के मैनेजर से कहा—

"आपके घर पर एक रोस्ट किया हुआ मुर्ग भिजवा दीजिएगा और कुछ मछली।"

रात को मेरा और उनका बिस्तर बराबर-बराबर था। उनकी बातों से तंग आकर मेरी आँख लगने वाली थी कि उन्होंने चौंका दिया—

"बस, अब दूध आ जाय तो सोयें।"

"दूध? दूध तो...."

"तुम्हें इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं। मैंने हलवाई से कह दिया था कि मलाई वाला एक सेर दूध यहाँ पहुँचा दे। वह आता ही होगा।"

उनकी बात सच निकली। हलवाई का नौकर दूध लेकर आ पहुँचा। अगले दिन दस बजे सोकर उठे।

"भई, आज तो नहाएँगे।"

लाला छम्मनशाह उन व्यक्तियों में से थे जो गरमियों में प्रतिमास और सरदी के सारे मौसम में केवल दो बार नहाया करते थे। मैं उनके स्नान से परिचित था। उसमें विशेष काम सिर के बालों को धोना था। उन्होंने सिर पर लम्बे-लम्बे बाल पाल रखे थे जो ऊपर कैंची से तराशे जाते थे और उन्हें एक सीधी और साफ़ सड़क ने दो भागों में विभाजित कर रखा था। मैंने मुन्शी को बुलाकर कहा, "देखो, आपके नहाने का प्रबन्ध करो। दो साबुन, सेर दही और सरसों का तेल, सब बाथ रूम में रखा दो।"

"हा, हा, हा," छम्मनशाह हँस पड़े, "अरे यार, क्या मैं गँवार हूँ ? सरसों का तेल ! हा, हा, हा। अरे मिस्टर मुन्शी, 'जुल्फे बंगाल' ! सुना ?"

मुन्शी विस्मित होकर मेरी ओर देखने लगा, जैसे पूछ रहा हो यहाँ बंगाल की ज़ुल्फ़ें कैसे मिल सकती हैं ? मैंने उसकी सहायता करने का विचार करते हुए कहा, "आपका मतलब है जुल्फ़े बंगाल हेयर आयल। सुगन्धित तेल। समझे ?"

"जी !"

और वह सिर खुजाता हुआ कमरे से बाहर चला गया।

दस दिन के पश्चात् लालाजी को खजियार की सैर की सूझी; बाज़ार में घोड़े वाले से उसकी प्रशंसा सुन आए थे। उनकी यह बात सुनकर मैं काँप उठा। पैदल जाने से तो वह रहे। फिर एक घोड़े से कुछ बनेगा नहीं। खाने का सामान ले जाने के लिए एक क़ुली की जरूरत भी थी। यह भी डर था कि प्राकृतिक छटा से प्रभावित होकर वहीं जमने का इरादा न कर लें। मैंने खामोशी से गरदन हिला दी। लेकिन खामोशी के साथ ही, इस आपत्ति को टालने के लिए जो प्रयत्न कर सकता था, किये।

शाम की चाय पर मेरे मकान में सागरचन्द ओवरसियर एक अनौपचारिक जलसे की अध्यक्षता कर रहे थे। बातों-बातों में लालाजी के खजियार जाने की बात छिड़ गई। अध्यक्ष महोदय ने भयभीत होकर सहानुभूति दरशाते हुए कहा, "साहब, बड़े खतरे की जगह है। चीते दबे पाँव आकर मुसाफ़िरों पर हमला कर देते हैं। रीछ तो ऐसा ज़ालिम है कि ईश्वर ही बचाए, और-तो-और खजियार के मार्ग में बन्दर एक नम्बर पाजी होते हैं। उस दिन एक रीछ क्लेसर के रामू तेली की लड़की को ले भागा.....और जब वह उसे जंगल में भयभीत-सी छोड़ गया तो बन्दरों ने उसे कितना परेशान किया। तोबा ! यह रीछ और बन्दर ! फिर मार्ग कितना दुर्गम। यदि कहीं ज़रा-सा पाँव फिसल गया

तो·····नीचे इतनी गहरी खड्डें कि आदमी का पता ही न चले। कहीं-कहीं तो बरफ़ भी नहीं पिघली, जिससे और भी फिसलन·····" जलसा समाप्त होते-होते छम्मनशाह ने अपना इरादा बदल दिया।

बीस दिन रुकने के बाद छम्मनशाह ने जाने की तैयारी की। मुन्शी से बोले—

"अरे भाई, दोपहर की बस से मेरे लिए एक सीट बुक करा आओ।"

"बहुत अच्छा," मुन्शी ने प्रसन्न होकर कहा। परन्तु दूसरे ही क्षण जैसे कुछ याद आया। बोला, "पैसे ?"

"पैसे ? पैसे कैसे ?" छम्मनशाह विस्मित होकर बोले।

"बस वाले टिकट के पैसे माँगेंगे।"

"ओह ! टिकट के पैसे !" उन्होंने कहा, "अपने साहब से ले लो। मैं उनसे निपट लूँगा।"

विष का यह घूँट भी मुझे अन्तिम समझकर पीना पड़ा।

उनके चले जाने के कुछ दिन बाद रीगल होटल के मैनेजर ने मेरे हाथ में कागज़ का एक टुकड़ा दिया। मैंने पूछा—

"क्या है ?"

"आपके नाम का बिल।"

"मेरे नाम का बिल ? शायद आपको ग़लतफहमी हुई है।"

"साहब ! यदि दो-चार रुपये की बात होती तो ग़लतफहमी हो भी सकती है।"

"तो यह कितने का है ?"

"दो सौ का।"

मेरा सिर चकरा गया। पास ही कुरसी रखी थी, मैंने उसे मज़बूती से थाम लिया। नीचे की साँस नीचे और ऊपर की ऊपर रह गई। मैनेजर साहब मेरी यह हालत देखकर समझे कि दौरा पड़ता होगा। बिल को बाहर रखकर वह दबे पाँव खिसक गए। होश आने पर मैंने बिल

को ग़ौर से देखा। लालाजी का व्हिस्की का बिल था जो शाम को अकेले आकर पी जाते थे।

महीने का प्रथम सप्ताह था और मैं स्वस्थ हो चला था कि एक दिन प्रातः ही किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। कोई चालीस-पैंतालीस की आयु थी और शरीर मुटापे की ओर अग्रसर था।

"आपने मुझे पहचाना नहीं ?" वह मुस्कराकर बोले।

"हैं·····नहीं·····हाँ·····मेरे विचार में·····आप·····"

"वास्तव में तुम्हारा दोष नहीं। तुम उस समय बिलकुल बच्चे थे।"

मैं और भी विस्मित हो उठा, क्योंकि कभी-न-कभी तो प्रत्येक व्यक्ति बच्चा ही रह चुकता है।

"आपका शुभ नाम पूछ सकता हूँ ?" मैंने डरते-डरते पूछा।

"हा, हा, हा। नाम भी भूल गए ? हाँ, देर हो गई न। मेरा नाम तेलूराम है।"

तुरन्त मेरे दिमाग़ में हलचल शुरू हो गई—तेलूराम। हमारे वंश में तो इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं। सम्बन्धियों में भी कोई नहीं, न गाँव में। मेरे बचपन के, स्कूल या कालेज के साथियों में भी इस नाम का कोई याद नहीं आया। हाँ, मेरे एक मित्र के भाई ज़रूर इस नाम के थे। लेकिन उनकी शकल तो चीनियों से मिलती थी और यह पठान दिखाई देते थे। तो क्या पत्नी के सगे-सम्बन्धियों में से हैं ? परन्तु उनके निकट सम्बन्धियों को तो मैं जानता था और दूर वालों को वह स्वयं भी न जानती थी। मैंने साहस बटोरकर फिर पूछा, "आप शायद हमारे सम्बन्धी हैं।"

"और क्या शत्रु हैं ?" वह हँसकर बोले। "सम्बन्धी और बहुत नज़दीकी। तुम्हारे चाचा हैं न ?"

"जी हाँ, सात चचा हैं," मैंने कहा।

"मेरा मतलब, सबसे छोटे से बड़े।"

"जी।"

"उनकी पत्नी के मामा का दामाद हूँ।"

मेरा सिर चकरा गया। गणित में कमज़ोर होने के कारण यह प्रश्न चुटकियों में हल नहीं कर सका।

"ओह! अब समझ में आया।"

"आइए, पधारिए।"

"लेकिन पहले बस-स्टैंड से सामान उठवा लाऊँ। साथ में तुम्हारी चची और तुम्हारे छोटे भाई भी हैं।"

"चलिए," यह कहकर मैं उनके साथ तो हो लिया, लेकिन पैरों में मन-मन के पत्थर बँधे हुए थे। मार्ग में कहने लगे, "तुम्हारी चची कहने लगीं कि जब हमारा भतीजा डलहौज़ी में है तो वहाँ उससे मिलने न जाना कितनी बुरी बात है। फिर आखिर रिश्तेदारी इसी तरह मिलने-जुलने और बरतने से मज़बूत होती है। मैंने तो उससे कहा अरी भलीमानस! क्यों उस बेचारे को परेशान करें? क्यों न होटल में ठहर जायँ? लेकिन उन्होंने कहा कि यदि होटल में ठहर गए तो सुहागरानी (मेरी चाची) को क्या मुँह दिखाएँगे। वह आयु-पर्यन्त क्षमा नहीं करेंगी। अब देखिए, स्त्रियों की बात न मानना भी कितनी मुसीबत है।"

"और मानना इससे भी बड़ी मुसीबत है।"

शब्द मेरी ज़बान पर आकर रुक गए। 'हूँ हाँ' के अतिरिक्त मेरे मुँह से कुछ न निकला। जिस प्रकार बकरा अनिच्छा से वध-स्थान की ओर जाता है, उसी प्रकार मैं भी बस-स्टैंड की ओर चला जा रहा था। बस-स्टैंड से सामान उठवाया और चचा-चची को उनके दो बच्चों समेत घर लाया।

पहले दिन उन्होंने बतलाया कि केवल दो सप्ताह के लिए तशरीफ़ लाए हैं, लेकिन डलहौज़ी का मौसम इतना सुन्दर हो तो कोई क्या करे? पन्द्रह दिन बाद चचा ने अपने पिताजी को भी बुला लिया।

वे प्रातः ही पराँठों और आमलेट का नाश्ता ले और दूध पीकर घूमने निकल जाते। दोपहर को मालिश करके नहाते और जमकर खाना खाते। सैर और मालिश से उनकी भूख खूब चमक उठती थी। चचा

को मटन बहुत पसन्द था और उनके पिताजी को मछली भाती थी। और मुझे उनकी और उनके बच्चों की इसलिए भी सेवा-शुश्रूषा करनी थी कि, "नहीं तो सुहागरानी को क्या मुँह दिखलाएँगे।"

शाम को चचाजी के बूढ़े पिता प्रेमभाव से कहते, "देखो ना तेलू-राम, उड़द कितने स्वादिष्ट बने हैं। देवी की सौगन्ध! पहाड़ के उड़द बहुत मीठे होते हैं। इनसे कह दो हमारे लिए दस सेर ज़रूर मँगवा दें।"

यही बातें पहाड़ की मूँग के विषय में होतीं। शहद और घी तो वहाँ के विशेष उपहार थे। यदि भाई के विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चाची को सहसा न जाना पड़ता तो वे लोग अभी दो मास और रुकते। लेकिन चची ने परामर्श दिया कि जब उनके ससुर को शादी में नहीं जाना तो वह क्यों न और रुके? मैंने सफेद झूठ घड़ते हुए कहा—

"कल साहिब आए थे और तबादले के लिए कह गए हैं। शायद एक सप्ताह पश्चात् यहाँ से जाना पड़े।"

जब उन्हें बस-स्टैंड से छोड़कर वापिस लौटा तो श्रीमती जी बोलीं, "मेरी भौजाई का भाई बाल-बच्चों सहित यहाँ आ रहा है। उनके लिए राशन मँगवा लीजिए।"

"तुम स्वयं ही ले आओ। साथ ही चवन्नी की अफ़ीम भी लेती आना।"

"मेरे सम्बन्धियों के लिए अफ़ीम मँगवा रहे हैं?" वह उत्तेजित होकर बोलीं।

"अरे बाबा!" मैंने माथे पर हाथ रखकर कहा, "पहाड़ का यह विशेष उपहार मैं अपने लिए मँगा रहा हूँ।"

"अब आपको अफ़ीम याद आई। और पहाड़ पर तबादला कराओ।"

"मैं स्थानान्तरण के लिए प्रार्थना-पत्र लिख रहा हूँ।"

"आप जाइए। हम तो यहीं रहेंगे।"

"यदि कोई और अतिथि आ गए तो? धक्के देकर घर से बाहर निकाल दूँगी।"

"मुझे ?"

"उन्हें।"

उसके होंठों के कोनों पर मुस्कान की एक क्षीण झलक व्यक्त होकर अदृश्य हो गई।

मैंने तबादले के लिए निवेदन-पत्र लिख दिया। मित्रगण मेरा मज़ाक उड़ाने लगे कि जून मास में मैदानों का तबादला कराना मूर्खता नहीं तो और क्या था ? लेकिन मैं स्थिति को उनसे कहीं अधिक जानता था। मेरा दृढ़ निश्चय देखकर कुछ व्यक्तियों ने सम्बन्धित मन्त्री से मिलने की कोशिश की। मैंने उन्हें उत्तम डिनर खिलाने का वादा किया, उनकी अनुनय-विनय की और तब कहीं जाकर उन्हें रोक सका।

मेरे स्थान पर आने के लिए मुझसे भी बढ़कर कई मूर्ख तैयार थे। लेकिन दफ़्तरी कार्यवाही में भी तो कम समय नहीं लगता। इस बीच अतिथियों की भीड़ लगी रही। सबसे पहले जितेन्द्र आये। आप मेरे सह-पाठी थे और कालेज के ज़माने में मेरे साथ ही मेरे कमरे में रहते थे। नौकरी मिल जाने पर भी मेरे पास रहे। फिर मेरा तबादला हो गया। उन द्वारा विवश किये जाने पर लम्बी छुट्टी लेकर मैं उनके पास ठहरने के लिए गया। कुछ दिन मेरे पैसों से खूब मेरा आतिथ्य किया और बाद में एक विचित्र बहाना गठकर मुझे अपने घर से विदा कर दिया। यही नहीं, उन्होंने मेरे मित्रों में बहुतों को मेरे विरुद्ध मनगढ़न्त बातें करके मुझसे नाराज़ कर दिया। बाद में एक मित्र की बहन से ऐसे सम्बन्ध कर लिये कि उन्हें विवश होकर उन दोनों का विवाह करना पड़ा। अब वह दो मास की छुट्टी लेकर अपनी पत्नी और चार बच्चों सहित मेरे पास ठहरने और मुझ पर अनुग्रह करने आए थे।

वह गये तो निरंजनसिंह अपने दो मित्रों सहित आ जमे। वह अभी लौटे नहीं थे कि अकरम ने तार द्वारा अपने आने की सूचना भेजी। श्रीमती की भौजाई का भाई तो बच्चों सहित पहले आ चुका था। अब उसकी पत्नी का भाई आ पहुँचा। उधर दफ़्तरों में काग़ज़ घूमते रहे।

ऐसी हालत में वेतन से तो गुज़ारा चल नहीं सकता था। प्रोवीडेन्ट फण्ड से ऋण लिया। वह समाप्त हुआ तो बीमे के रुपये में से उधार लिया। आख़िर वह भी कब तक चलता। पहाड़ पर रहने वालों से जो सम्बन्ध बनाए थे, उन्हें ऋण की शक्ल में भुनाया और ये सम्बन्ध कई सप्ताह बल्कि कई मास काम आए। श्रीमती जी को अपने गहनों की चिन्ता लगी। मुझे बतलाए बिना उन्होंने उन्हें बैंक में जमा कराया। आख़िर नोटिंग ख़त्म हुई और नवम्बर में जाकर तबादले की ख़बर आई।

अब डलहौज़ी से जाना कम-से-कम गरमियों तक फ़िज़ूल था, क्योंकि सरदियों में पहाड़ पर नहीं मैदान में अतिथियों का भय होता है। यदि पहाड़ों पर मैदानी अतिथि आते हैं तो मैदानों में पहाड़ी और फिर हमने तो अतिथियों के कारण पहाड़ वालों से घनिष्ठ सम्बन्ध भी बना लिए थे।

किरन

किरन

● ● ●

गले को साफ़ करते हुए वक्ता ने जोश में आकर कहा, "और न ही कान्फ्रेंस एक खालिस मज़हबी जमात (धार्मिक संस्था) है बल्कि इसके सिद्धान्त बहुत खतरनाक और हमारे मज़हब के पैरोकारों (अनुयायियों) के लिए निहायत (अतीव) मुहलक हैं। हिन्दुस्तान में खालिस मज़हबी राज्य की स्थापना ही इसका ध्येय है। कान्फ्रेंस का साम्राज्यवाद अपने तेज़ दाँत निकाले हुए हमें चबा डालने को तैयार खड़ा है। क्या आप इन मज़हबी नेताओं की बातों में आकर, इनकी गुलामी का दम भरने को तैयार हैं ?"

"बिलकुल नहीं," एकदम बहुत-सी आवाज़ों की गूँज सुनाई दी।

"यह सरासर (नितान्त) ग़लत है कि कान्फ्रेंस धार्मिक संस्था है। आपके धर्म का अनुयायी होते हुए भी मैं कान्फ्रेंस का सदस्य हूँ। आपको तथाकथित धार्मिक नेताओं की बातों में कभी नहीं आना चाहिए।"

"इसको कान पकड़कर बाहर निकाल दो," सभापति ने क्रुद्ध होकर कहा।

कई हाथ उस युवक की ओर लपके और उसे धक्के देकर निकाल दिया गया।

"ऐसे लोगों की हमें कोई जरूरत नहीं," वक्ता ने भाषण जारी रखते हुए कहा, "ये क़ौमी ग़द्दार (देशद्रोही) हैं। समय आने पर हम इनसे भी निपटेंगे। अभी हमें कान्फ्रेंस की चुनौती को स्वीकार करना और मज़-

हवी हकूमत को क़ायम (स्थापित) करना है। दोस्तो, याद रखो, हम ख़ून की नदियाँ बहा देंगे।"

"बेशक।"

इस जोशीले भाषण ने लोगों की कई वर्षों से सोई हुई भावनाओं को जगा दिया। हीनता के भाव से दबे हुए मनुष्य अपने अन्दर नया साहस महसूस करने लगे। उनके सशस्त्र गिरोह नगर का चक्कर लगाने लगे। जहाँ भी दूसरे धर्म का अनुयायी कोई दूसरा व्यक्ति मिलता, वे उसे मृत्यु की नींद सुला देते और उनके घरों को अग्नि की भेंट कर देते। जलते हुए घरों की ज्वाला आकाश की ओर लपकती; जैसे उनकी दृष्टि देवताओं के निवास-स्थान की ओर हो। इन्सानों की लाशें यत्र-तत्र बिखरी पड़ी थीं, जैसे प्लेग के दिनों में चूहे मरे पड़े हों। कई दिन तक यही दशा रही। एक दिन कुछ व्यक्ति एक गली में से गुज़रे और अचानक एक मकान के पास आकर रुके। अन्दर कोई धीरे-धीरे कह रहा था—

"सर्वशक्तिमान् होते हुए भी क्या तू पीड़ितों की रक्षा नहीं कर सकता? भला हमने तेरा क्या बिगाड़ा है? न खाने को अन्न है, न पीने को पानी। बाहर यमराज का और अन्दर भूख का पहरा है। इससे तो यही अच्छा है कि तू हम सबको उठा ले।"

"अभी उठा लिए जाओगे," नेता ने बाहर से गरजकर कहा। "खोलो दरवाज़ा। नहीं तो हमारे पास अभी पैट्रोल समाप्त नहीं हुआ।"

दरवाज़ा न खुला तो उसे तोड़ दिया गया। अन्दर पाँच व्यक्ति थे—एक मनुष्य और उसकी पत्नी; उसकी दो सुन्दर तथा जवान लड़कियाँ और एक छोटा-सा बच्चा। वे सब सहमे हुए खड़े थे।

"ख़बरदार! कोई आगे न बढ़े।" सरदार ने अपने सिपाहियों को ललकारते हुए कहा। फिर घर के मालिक को सम्बोधित करके बोला—

"अपना सब ज़ेवर और नक़द रुपया यहाँ रख दो।"

घर का मालिक प्रसन्न हो उठा। उसका मन आनन्द से नाचने लगा जैसे सरदार के इस आदेश में उसकी अपनी और अपने कुटुम्ब की रक्षा

का आश्वासन हो। उसने गहनों से भरा हुआ एक बक्स और नक़द रुपया सरदार के आगे रख दिया और सन्तोष का एक गहरा साँस वायु में छोड़ दिया, जैसे अपनी सारी पूँजी दे डालने के बाद उसे बहुत बड़ी धन-राशि मिल गई हो। वह अपने भाग्य की पूरी तरह सराहना कर भी न पाया था कि सरदार की आवाज़ फिर उसके कान में गूँजी—

"बच्चे को भी हमारे सुपुर्द कर दो।"

उसका दिल बैठ गया। उसका शरीर काँप उठा। सामने नंगी तलवार लिये यमराज के दूत खड़े थे। क्या बच्चे को उनके हवाले करने से खतरा टल जायगा या और भी बढ़ जायगा। उसका एक ही लड़का था—चाँद-सा, उन सबके प्रेम का केन्द्र-बिन्दु। उसका साधारण-सा कष्ट भी सारे कुटुम्ब को विक्षुब्ध कर देता था। उनकी एक ही इच्छा थी कि उनका लाडला पुत्र सदैव सुखी और प्रसन्न रहे।

"क्या सोच रहे हो ?"

"मेरे बच्चे पर दया कीजिए," उसने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की। "सब-कुछ आपके सुपुर्द कर दिया। इसे मेरे पास रहने दीजिए। यह मेरे हृदय का टुकड़ा है; मुझे प्राणों से भी प्यारा है। आप मुझे मार डालिए, मेरी पत्नी और लड़कियों के भी प्राण ले लीजिए, लेकिन मेरे इस इकलौते बेटे को मुझसे जुदा न कीजिए।"

"हमारे पास फ़िज़ूल बकवास सुनने के लिए समय नहीं। हमें और भी काम करने हैं। यदि और सब की सलामती चाहते हो तो बच्चे को हमारे हवाले कर दो।"

न जाने सरदार को क्या सूझी। उसने बच्चे को सरदार के सुपुर्द कर देने का निश्चय कर लिया। आख़िर वह भी तो मानव था। उसी शहर का रहने वाला। उसके भी तो बच्चे होंगे। वह भी तो बाप होगा। वह यों ही घबरा गया था।

"बेटा, जाओ इनके पास," उसने बच्चे को गोद से उतारने का प्रयत्न करते हुए कहा। बच्चा और भी ज़ोर से बाप से लिपट गया।

वह बहुत ज्यादा सहमा हुआ था और उन्हें देखकर भयभीत हो रहा था।

"बेटा ! ये बहुत अच्छे हैं। जाओ इनके पास।"

किन्तु वह आँखें बन्द किये हुए उससे लिपटा रहा।

"अच्छा यह लो।" उसने नीचे रखे हुए बक्स में से एक रुपया निकालकर उसके हाथ में देते हुए कहा। "यह बाज़ार से तुझे बरफ़ी ले देंगे।"

बरफ़ी का नाम सुनकर, भूख से व्याकुल बच्चा उस सारी परिस्थिति को भूल गया। उसने रुपया ले लिया और गोद से नीचे उतर पड़ा। फिर धीरे-धीरे सरदार की ओर बढ़ा। लेकिन बीच ही में रुक गया। सरदार की भयानक आकृति ने उसे भयभीत कर दिया।

बच्चे की इस देर से सरदार क्रोध से पागल हो उठा। उसने बच्चे को पकड़कर उसे वायु में उछाला और फिर तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिए।

रक्त की एक धारा भूमि पर बह निकली। एकदम कई चीखें आकाश की ओर भाग निकलीं। भूमि ने खून को चखा, लेकिन फटने से इन्कार कर दिया। आकाश ने चीखें सुनीं, किन्तु खामोश रहा। इन्द्र अप्सराओं के नृत्य में मग्न थे। देवता स्वर्ग का आनन्द लूट रहे थे। भगवान् मूक थे।

माँ मूर्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। बाप पत्थर बन गया। उसे आँसुओं की ज़रूरत थी, लेकिन वे सूख गए थे। बहनें सहमकर दीवार से लग गई थीं।

एक तलवार वायु में चमकी और बाप के गले से मिल गई। पिता की आत्मा पुत्र की आत्मा से जा मिली।

सरदार आगे बढ़ा और दीवार से लगी हुई लड़की को पकड़कर कमरे में ले गया, फिर दूसरी को और उसके बाद उनकी माँ को और बाहर आकर बोला—

"सब बारी-बारी से अन्दर जा सकते हैं।"

उसी समय गली में शोर बुलन्द हुआ और राइफ़ल सँभाले एक नवयुवक घर में प्रविष्ट हुआ और ललकारकर बोला—"ज़ालिमो ! इन्सानियत के शत्रुओ ! कुत्तो ! भेड़ियो ! सलामती चाहते हो तो तलवारें फेंक दो। नहीं तो एक-एक को गोली का निशाना बना दूँगा।"

सबके हाथ से तलवारें छूटकर ज़मीन पर गिर पड़ीं और वे एक-एक करके जान बचाकर भागने लगे।

दो लाशों को भूमि पर पड़ा देखकर नवयुवक सोचने लगा—

ज़ालिमों ने बाप-बेटे दोनों ही को समाप्त कर डाला। दो जलते हुए दिये बुझा दिए। मुझसे बड़ी भूल हुई। मैंने इन राक्षसों को गोली का निशाना क्यों न बनाया ?

उसकी सहानुभूति से भरी आवाज़ सुनकर दोनों लड़कियाँ चिल्लाईं—"हमें बचाओ—हमें बचाओ।" माँ के रोने की आवाज़ें सुनाई दीं। वह अन्दर गया और उन्हें देख आह भरते हुए बोला—

"इन बदमाशों ने ज़रूर इन कलियों को रोंदा होगा। ये खूनी भेड़िये कोई काम अधूरा नहीं छोड़ते। माँ, मैं समझता हूँ यह मरा हुआ आदमी ज़रूर तुम्हारा शौहर (पति) होगा और यह मासूम बच्चा तुम्हारा लड़का। इन दरिन्दों ने दोनों को तुम्हारी आँखों के सामने मार डाला। अफ़सोस ! हज़ार अफ़सोस ! ज़मीन फट क्यों न गई ? आकाश गिर क्यों नहीं पड़ा ? माँ ! इन नापाक ज़ालिमों की इस हरकत के लिए मैं तुझसे और अपनी इन बहनों से क्षमा चाहता हूँ। ये सब पागल हो गए हैं और अपने भाइयों का खून बहाने में मज़ा लेते हैं। आओ तुम, मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारी सेवा करूँगा। तुम्हारे आँसू पोंछूँगा और तुम्हारे ज़ख्मी दिलों पर मरहम रखूँगा। माँ, मैं भी बाप हूँ, पति हूँ। जब तक चाहो मेरे पास मेरे घर पर रहो। फिर तुम्हें तुम्हारे सम्बन्धियों के पास भिजवा दूँगा।"

परिवर्तन

परिवर्तन

पंजाब में बस की यात्रा में घोर परिवर्तन आ चुके हैं। आज की और कुछ वर्ष पूर्व की बस-यात्रा में बहुत अन्तर है। पहले कंडक्टर सामान को स्वयं छत के ऊपर रखवाते थे और उसके गुम हो जाने का ज़िम्मा भी लेते थे। पहले ड्राइवरों और कंडक्टरों की वर्दी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। वे शलवार पहनें अथवा पाजामा, तहमद बाँधें या चड्डी, कमीज़ पहनें या कुरता, और चाहे तो कुछ भी न पहनें। न पोशाक की पाबन्दी न उसके रंग की। परन्तु अब तो उन्हें वरदी पहननी होती है और वह भी खाकी रंग की। इसका असर उनके व्यक्तित्व पर नहीं बल्कि दिलो-दिमाग़ पर भी पड़ता है। ड्राइवर अब तक सम्मानित तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति है और अपने-आपको बहुत महत्त्वपूर्ण समझता है। पहले की तरह उसे सवारियों और बस-मालिकों की खुशामद की ज़रूरत नहीं। वह सरकारी मुलाज़िम है और अपने उत्तरदायित्व को भली भाँति समझता है। बस भरी हो या खाली, उसमें एक सवारी हो या दस, समय होते ही वह अपनी सीट पर बैठ जायगा, हार्न बजाकर बस को स्टार्ट करेगा। पीछे मुड़कर वह सवारियों की ओर निगाह उठाकर नहीं देखेगा, जैसे वे जीवित स्त्री-पुरुष नहीं, मिट्टी के ढेले हों। यदि यात्रियों के स्थान पर बोरियाँ लदी हों तो वह उन्हें अधिक महत्त्व देगा। उसे उनका ज़िम्मा सँभालना होता है। मुसाफ़िरों के बजाय उसे निर्जीव बस और उसके इंजन से सम्बन्ध है और उसके कानों को कंडक्टर की घण्टी से। कंडक्टर की

घण्टी से वह रुकी हुई बस को चला देगा और चलती हुई बस को रोक देगा। मार्ग में किसी मुसाफ़िर के हाथ दिखाने पर भी, कंडक्टर की घण्टी के बग़ैर, वह बस को कभी नहीं रोकेगा और घण्टी सुनते ही वह यात्रियों से खचाखच भरी हुई गाड़ी को तुरन्त रोक देगा। सवारी से उसे कोई सम्बन्ध नहीं, न उसके किसी प्रश्न से। उससे बात करने के बजाय आप किसी पेड़ से बात कर सकते हैं। कंडक्टर को सवारियों से ज़रूर सम्बन्ध होता है, क्योंकि उसे टिकट काटने और टिकटों के पैसे वसूल करने होते हैं। परन्तु वह भी उन्हें जीवित स्त्री-पुरुष नहीं, केवल मशीन के पुरज़े-मात्र समझता है। वह केवल विशेष प्रश्न पूछेगा और विशेष बात करेगा।

"कहाँ का ?"

"पठानकोट का।"

"दो रुपये सात आने।"

सवारी खामोशी से उसे पैसे दे देगी और वह चुपचाप उसकी ओर टिकट बढ़ा देगा और दूसरी सवारी से वही प्रश्न करेगा। पैसे लेने और टिकट काटने से बढ़कर उसकी दृष्टि में सवारी का कोई महत्त्व नहीं। यदि यात्रियों के बजाय ईंट और पत्थर उसे पैसे दे सकते तो वह उन्हें भी, उसी प्रकार किसी भाव में उत्प्रेरित हुए बिना ही, टिकट काटकर दे देता और शेष पैसे भी।

यदि कोई सवारी यह कहने का दुस्साहस करे, "सरदार जी, ऊपर छत पर सामान तो सुरक्षित है न ?" तो उत्तर में वह तुरन्त कहेगा, "सामान की ज़िम्मेदारी सवारी की है।" और उसी साँस में वह चिल्लाकर कहेगा "टिकट के बिना कोई और सवारी ?"

परन्तु दृढ़ संकल्प रखने वाली यदि कोई सवारी, मान-अपमान की उपेक्षा करके, यह कहने का दुस्साहस कर ही बैठे, "कंडक्टर साहब ! सवारी तो गाड़ी के अन्दर बैठी है और सामान छत के ऊपर पड़ा है," तो सरदारजी का चेहरा पूर्ववत्, भावनाशून्य रहेगा और वह उसी

प्रकार कड़ाई से कहेगा, "टिकट के ऊपर लिखा है, पढ़ लीजिए। जिसके पास टिकट नहीं, वह ले ले।"

और मामला समाप्त कण्डक्टर के दृष्टिकोण से। परन्तु मुसाफ़िर के ऊपर जैसे वज्र आ गिरता है। बस के अन्दर बैठा, वह छत पर रखे सामान की निगरानी कैसे कर सकता है? उसके पास अलादीन का चिराग़ तो है नहीं। बस हर छोटे-बड़े स्थान पर रुकती है। सड़क के किनारे भी रुक जाती है। यात्री उतरते हैं, बैठते हैं, सामान उतारते हैं, रखते हैं और आप अन्दर बैठे हुए अपने सामान के ज़िम्मेदार हैं! आपका मन संसार की सब बातों से नाता तोड़कर, सामान के बीच में आ गया है। गाड़ी रुकी। एक व्यक्ति छत के ऊपर चढ़ा। उसके कपड़े जैसे तेल में भीगे हुए थे। शायद तेली था। उसने अपना सामान उतारा। ट्रंक, बाँस और पीपे। शायद मिट्टी के तेल के।

"हो गया?" कण्डक्टर ने पूछा।

"हो गया।"

उसने घण्टी बजाई और ड्राइवर ने गाड़ी चलाई।

मुझे तुरन्त याद आया कि सड़क के किनारे सफ़ेद रंग का ट्रंक पड़ा था। तेली के पास सफ़ेद रंग का ट्रंक कैसे हो सकता है? उसने अवश्य ग़लती से अथवा जान-बूझकर मेरा ट्रंक उतार लिया। दिल की धड़कन तेज़ हो गई और साथ ही नाड़ी की गति भी। उस ट्रंक में मेरे सब कपड़े थे। रेशमी और गर्म सूट। कमीजें और शेरवानियाँ। दम घुटने लगा। मुझे यह चिन्ता हुई कि यदि बस इसी गति से और नाड़ी इसी तेज़ी से चलती रही तो ट्रंक से हाथ धोने के साथ-साथ जान से भी हाथ धोना पड़ेगा। क्यों न कण्डक्टर से इस विषय में कुछ कहूँ? दिल कड़ा करके, मुड़कर, मैंने उसकी ओर देखा। परन्तु उसे पाषाण के समान मूक देखकर साहस मेरा साथ छोड़ गया। हृदय की धड़कन और हाथ की नब्ज़ तेज़ हो गई। मस्तिष्क ने हृदय को समझाया कि आख़िर इतने डरने का क्या कारण? क्या वह यमराज है जो निगल जायगा? मैंने

साहस बटोरते हुए पूछा, "सरदार जी ! तेली के सामान के साथ शायद मेरा सफ़ेद ट्रंक भी उतर गया।"

"कौनसा तेली ?" सरदार जी ने जैसे स्वप्न से चौंककर कहा।

"जो अभी उतरा है।"

"बाबूजी, गाड़ी नहीं रुक सकती। अगले स्टैंड पर उतरकर आप अपना सामान देख सकते हैं।"

मैं एक कड़वा घूँट पीकर रह गया। और कर भी क्या सकता था ? कुछ देर बाद बस रुकी तो तुरन्त बाहर निकलकर, तेज़ी से क़दम उठाता हुआ छत पर चढ़ा। ट्रंक को पाकर हर्ष से फूल उठा और भाग्य को सराहने लगा। परन्तु यह क्या ? बस तो चल पड़ी। मैंने घबराकर बुलन्द आवाज़ से शोर मचाया—

"सरदार जी ! कण्डक्टर साहब ! भाई साहब ! रोको, गाड़ी को रोको। मैं अभी छत पर सामान गिन रहा हूँ।"

बड़ी मुश्किल से गाड़ी रुकी। मैं जल्दी-जल्दी छत से उतरने लगा। घबराहट में पैर लोहे की सीढ़ी पर से फिसल गया। टाँगें नीचे लटक गईं। यदि हाथ साथ न देते तो मुँह के बल सड़क के किनारे गिर पड़ता। सँभल-सँभलकर नीचे उतरा और बस के अन्दर दाख़िल हुआ। सब मुसाफ़िर टकटकी बाँधकर मेरी ओर देख रहे थे जैसे मैं घोर पाप का भागी होऊँ। कण्डक्टर रोष से बोला, "बाबूजी, आपने नाक में दम कर दिया है।"

मैंने अभियुक्त के समान दोष स्वीकार करते हुए कहा, "ज़रा सामान···"

"सामान ! सामान ! सामान लेकर बस में आ जाते हैं, जैसे रेल-गाड़ी हो।"

मुझे इस आक्षेप से इतना कष्ट नहीं हो रहा था जितना सीट न मिलने का। यद्यपि बस फिर चल पड़ी थी, कोई खाली सीट नज़र नहीं आ रही थी और मेरी सीट पर तीन मन की एक ज़िन्दा लाश बैठी थी।

ज़िन्दा लाश के निकट जाकर मैंने रोष से कहा, "लालाजी ! यह मेरी सीट है।"

"आपकी है ? बड़े हर्ष की बात है। आप भी बैठ जाइए। रोकता कौन है ?"

"जगह भी तो हो ?"

"इसमें मेरा क्या दोष है ?"

"मैं जालन्धर से बैठा आया हूँ।"

"तो अब थोड़ी देर खड़े रहिए।"

"लालाजी, आपको यहाँ से उठना होगा।"

"तो उठ जाऊँगा," उन्होंने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया। "ज़रा दम तो लेने दीजिए। बस के लिए आध फरलांग भागना पड़ा। जै लाटाँ वाली, जै भोलेनाथ !"

और मैं खामोश खड़ा रहा।

गाड़ी चलती रही। पास बैठी बुढ़िया कै करने और चिल्लाने लगी। परन्तु बस तो मशीन है। उसे दूसरों के कष्ट से क्या ? जब रुकती तो कुछ मुसाफ़िर उतरते। परन्तु बैठने वालों की संख्या अधिक ही होती जाती। भीड़ इतनी कि साँस लेना कठिन। तंग आकर एक सवारी ने कहा, "सरदार जी ! हर बात की हद होती है। आप हैं कि सवारियाँ बिठलाए चले जाते हैं।"

कण्डक्टर ने एक तेज़ निगाह उस पर डाली जैसे चीर डालने का इरादा हो और बोला, "बाबूजी, यदि आपको न बिठलाते तो पता चलता। जाने वाले को कैसे न बिठलाएँ ?"

"और यदि सौ जाने वाले हों तो ?"

"तो भी बिठलाएँगे।"

कुछ देर बाद बस रुकी तो खाकी वरदी पहने एक साहब प्रविष्ट हुए। थे तो लारी-इन्स्पेक्टर, परन्तु इन्स्पेक्टर जनरल मालूम दे रहे थे काश्मीरी जवान। गोरा रंग। लम्बा क़द। गठा हुआ शरीर। चेहरे

पर गाम्भीर्य। खूब रौब वाले। वे टिकट चेक करने आए थे। सवारियों का कष्ट सुनने और दूर करने नहीं। सवारियों से उनका भी वही व्यवहार था जो ड्राइवर और कण्डक्टर का। हाँ, अकड़ उनसे कहीं अधिक थी। टिकट चेक करने के बाद एक सवारी को उन्होंने सीट पर से उठाया और स्वयं जम गए। कण्डक्टर और चेकर आपस में बातें करने लगे। उनके लिए दूसरे लोग जैसे गाड़ी में बैठे ही न थे।

अगले स्टैण्ड पर कुछ लोग और आ गए। इन्स्पेक्टर और कण्डक्टर सीटों पर बैठे रहे। मैं खड़ा रहा और पाँच-सात दूसरे लोग भी। कुछ मिनट बाद बस फिर रुकी। सड़क के किनारे पुलिस के एक सब-इन्स्पेक्टर खड़े थे जिनके सिर पर न हैट थी, न बाल, परन्तु जिनके चेहरे से रौब टपकता था। वे बस के अन्दर प्रविष्ट हुए और बोले, "कितनी अधिक सवारियाँ हैं ?"

"साहब····ज़रा····कुछ···"

"बकवास मत करो। साफ़-साफ़ जवाब दो। कहाँ है वाउचर ? अच्छा यह बात ! सात सवारियाँ अधिक हैं ! दुनीचन्द !" बाहर खड़े हुए हैड कान्स्टेबल को सम्बोधित करके "करो चालान। ये सवारियाँ खड़ी क्यों हैं ?"

कण्डक्टर चुप रहा।

"अच्छा, आप और चेकर साहब बैठे हुए हैं और सवारियाँ खड़ी हैं। सीटें पहले मुसाफ़िरों के लिए हैं, तुम्हारे और चेकर के लिए नहीं," वह कण्डक्टर को लताड़कर बोला, "यदि चेकर के लिए जगह नहीं, तो वह खड़ा होकर जाय। सुनते हो ?"

"जी जनाब।"

कण्डक्टर के मुँह से पहली बार ऐसा शब्द सुनकर, सवारियों के चेहरों पर हर्ष की हल्की-सी झलक नज़र आई और काश्मीरी चेकर का सबके सामने अपमान होते देखकर सब यात्रियों ने सन्तोष की एक गहरी साँस वायु में छोड़ी। "आया है इतना टिकट चेक करने वाला !" सबके

दिल, विजयी होने के कारण आनन्द से नाच रहे थे।

"यदि फिर कभी ऐसी हरकत की तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा। सुनते हो ?"

"जी। साहब, अब क्षमा कर दीजिए। फिर कभी ऐसा न होगा।"

"ड्राइवर ! तुम भी सुन लो।"

"जी जनाब," ड्राइवर खिसियाना-सा होकर बोला।

पुलिस-इन्स्पेक्टर उतर गए और बस चली। एक बंगाली मुसाफ़िर बोला, "खैर, यह तो मानना ही पड़ेगा कि आज के जनता राज में भी पंजाब का पुलिस बहोत रौब वाला है।"

"साहब ! इसका दुनिया में मुक़ाबिला नहीं," जिन्दा लाश लालाजी ने फ़रमाया, जैसे वह सारी दुनिया देख चुका था।

ड्राइवर, कण्डक्टर और चेकर का ऐसा 'सम्मान' होने से सब सवारियाँ प्रसन्न थीं और वे तीनों जले-भुने बैठे थे। अगले स्टैंड पर पाँच-छः सवारियाँ उतर गईं और कोई नई नहीं बिठलाई गई। बस फिर चली। मार्ग में तीन-चार स्थानों पर मुसाफ़िरों ने बस को रोकने के लिए हाथ दिखाया। लेकिन कण्डक्टर ने उनके हाथ की कोई परवाह न की और न घण्टी बजाने की आवश्यकता अनुभव की। परन्तु अब स्थिति में घोर परिवर्तन आ चुका था। भय भाग चुका था। साहस बढ़ गया था। अंग्रेजी सूट में सुसज्जित, परन्तु जैसे उसका कुप्रभाव दूर करने के लिए, सिर पर पगड़ी बाँधे हुए, एक सज्जन, जो विभाजन से पूर्व, पिण्डी घेप में नायब तहसीलदार थे और अब कोयलों के व्यापारी थे, अचानक बोल उठे, "मिस्टर ड्राइवर, गाड़ी रोको।"

"क्या बात है ?" ड्राइवर ने पीछे मुड़कर देखे बिना, गाड़ी को पूर्ववत् तेज़ भगाते हुए पूछा।

"तुम पहले गाड़ी रोको। तुम नहीं जानते मैं डिप्टी कलक्टर रह चुका हूँ ?"

ड्राइवर ने स्पीड मद्धम करके बस को रोक लिया। ज़िन्दा लाश

डिप्टी कलक्टर का नाम सुनकर काँपने लगा और उसके पसीना छूटने लगा। शेष मुसाफ़िर तनकर अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए।

"क्या बात है ?" ड्राइवर ने पूछा।

"बस को पीछे लौटाकर सड़क पर खड़ी सवारियों को बिठलाओ।"

"वे तो बहुत पीछे रह गईं।"

"कोई बात नहीं," उसने गम्भीरता से कहा।

"देर हो जायगी। हम पहले ही बहुत लेट हैं।"

"कोई हर्ज नहीं।"

"हर्ज कैसे नहीं ?" कण्डक्टर ग़ुस्से से बोला।

"तुम्हें लौटानी पड़ेगी। नहीं तो अगले स्टैंड पर चलकर पता चल जायगा। सरकारी गाड़ी है। किसी के घर की नहीं। लोगों की है। जनता की है। तुम समझते हो मैं कुछ नहीं जानता ? घास नहीं काटी, कलक्टरी की है, मिस्टर ! कलक्टरी।"

"आपका मतलब डिप्टी कलक्टरी," मैंने उनकी भूल सुधारते हुए कहा।

"एक ही बात है। मैं कई मास आफ़िशियेटिंग कलक्टर भी रहा हूँ। लेकिन डिप्टी कलक्टरी क्या कम होती है ?" उन्होंने गम्भीरता से कहा। सब लोग सिर हिलाकर उनकी बात का अनुमोदन कर रहे थे। कण्डक्टर रोष में आकर बोला, "अच्छा लौटाओ। हमें क्या, अगर देर हो गई, आप लोगों का ही नुक़सान होगा।"

ड्राइवर ने विवश होकर गाड़ी को वापस लौटाया और सड़क पर खड़ी सवारियों को बिठलाकर गाड़ी को भगाया। सब सवारियाँ सीटों पर बैठी थीं और दो की जगह अब भी खाली थी। ड्राइवर ग़ुस्से से लारी को दौड़ाए लिये जा रहा था जैसे उसे उलटाकर ही दम लेगा। अगले स्टैंड पर गाड़ी कुछ देर के लिए रुकी। जब मैं बाहर से पानी पीकर लौटा तो अपनी सीट पर एक दो वर्षीय बच्चे को खेलते हुए पाया। मेरी साथ वाली सीट पर घूँघट निकाले, एक स्त्री आ बैठी थी।

बच्चा मेरी सीट पर खड़ा था और पिछली सीट पर अपनी माँ की गोद में बैठे हुए दूसरे बच्चे से खेल रहा था। मैंने सोचा मुझे अपनी सीट के समीप खड़े देखकर, उसकी माँ, उसे गोद में सँभाल लेगी। लेकिन वह टस-से-मस न हुई और ज्यों-की-त्यों अपनी सीट पर जमी रही। यह है सभ्यता ! आई है इतनी घूँघट वाली ! मैंने उस स्त्री पर मन-ही-मन में ताव खाते हुए कहा। परन्तु मैं उसी सीट पर आगे को होकर बैठ गया ताकि बच्चा खेलता रहे। परन्तु धैर्य की भी कोई सीमा होती है, चाहे आपकी बग़ल में घूँघट वाली स्त्री ही क्यों न बैठी हो। कोई पन्द्रह मिनट के पश्चात् मेरा धीरज जाता रहा और दिल को कड़ा करके अपने बाईं ओर बैठी उस स्त्री को सम्बो-धित करके मैंने कहा—

"बच्चे को गोद में ले लीजिए।"

और साथ ही मेरा दिल छाती से ज़ोर-ज़ोर से टकराने लगा। ज़िन्दा लाश और भूतपूर्व नायब तहसीलदार मेरी ओर देख रहे थे। परन्तु मेरे प्रश्न के उत्तर में उस स्त्री ने गर्दन को बल देकर, घूँघट को दोनों हाथों से ज़रा ऊपर उठाकर मेरी ओर मुस्कान-भरी दृष्टि से देखा। शायद किसी दूसरे समय में मेरी दशा कुछ और होती, परन्तु इस समय मैं लज्जा से पानी-पानी हो रहा था। उस स्त्री की आँखें मुझसे कह रही थीं, "मूर्ख ! मेरी शकल को देखकर तुम यह अनुमान नहीं लगा सकते कि मैं नव-विवाहिता हूँ। यह दो वर्ष का बच्चा मेरा कैसे हो सकता है ?" परन्तु मैं उस समय उसकी मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का विश्लेषण करने नहीं बैठा था। उसकी मुस्कराहट के बदले में मैं मुस्करा नहीं सकता था, क्योंकि इतने लोगों की मौजूदगी में, मुझे अपने सिर के बाल बहुत प्यारे थे, चाहे वे तेज़ी से झड़ ही क्यों न रहे थे। दूसरे, मैंने पूरी सीट के पैसे दिये थे, तंग क्यों बैठूँ, जब कि मैं पहले ही दण्ड भुगत चुका था।

"बच्चे को अपनी गोद में ले लीजिए।"

यह सोचकर कि शायद वह मेरी बात नहीं समझी, मैंने बात को

फिर दुहराया ।

"दूसरे का बच्चा मैं कैसे गोद में ले लूँ ?" वह लज्जा से गरदन दुहरी करती हुई बोली । शायद वह समझी कि बच्चा मेरा है ।

"ओह !" मैंने कहा । अब लज्जित होने की मेरी बारी थी । मैंने पिछली सीट वाली स्त्री से वही प्रश्न किया । वह मेरी ओर देखकर बोली, "बाबूजी, मेरे एक ही आयु के दो बच्चे कैसे हो सकते हैं ?"

"जुड़वाँ भी तो हो सकते हैं," मोटा लाला बोला ।

"जुड़वाँ होंगे तेरे, तेरी माँ के, तेरी बहन के," वह उत्तेजित होकर बोली, "मेरे क्यों ? मुशटण्डा कहीं का । तुझे शरम नहीं आती ?"

लेकिन यह शर्म का नहीं, काम का समय था । बच्चे की माँ ढूँढने का काम ।

"यह किसका बच्चा है ?" मैंने चिल्लाकर पूछा ।

"अपने बाप का और किसका ?"

"लेकिन किस बाप का ?"

कोई उत्तर न मिला ।

"कौनसा बच्चा ?" फ़ौज का एक सिपाही, जैसे नींद से जागकर और अपनी सीट से ज़रा उठकर बोला, "यह बच्चा ? अरे, यह तो उन जमादार साहब का है जो अभी टाँडा में उतरे थे ।

"वही जो आधी दर्जन बच्चे लिये बैठे थे ?" कंडक्टर ने पूछा ।

"हाँ, हाँ, वही ।"

एक लाला जी बोले—

"लोगों को ट्रंक और बिस्तर भूलते तो सुना था, लेकिन बच्चे भूलने की तो यह बिलकुल अनोखी बात है ।"

"अब यदि बच्चे अधिक हों तो कैसे न भूलें ?" अंग्रेज़ी लिबास पहने एक नवयुवक बोला ।

"या अल्लाह !" एक काश्मीरी मोटर की छत की ओर मुँह उठाकर

कहने लगा।

"वाह गुरु, वाह गुरु," एक सरदार जी कहने लगे।

"श्री कृष्ण, श्री कृष्ण," मोटे लाला जी कहने लगे।

अगले अड्डे पर कण्डक्टर ने उस बच्चे को एक दुकानदार के हवाले किया कि पता करके उसे अपने माता-पिता के पास भिजवा दे।

बस रुकी तो मुझे फिर सामान की चिन्ता हुई। छत पर जाकर सामान को देखा। ट्रंक तो था—परन्तु बिस्तर न था। मेरे होश गुम हो गए। अब कण्डक्टर से कैसे कहूँ? सारे सामान को उलट-पलटकर देखा। एक गन्दे काले बिस्तर में, जो एक ओर से काफ़ी फटा हुआ था, मुझे अपना कम्बल नज़र आया। हो सकता है कि वैसा ही कम्बल किसी दूसरे का हो। परन्तु उस पर मेरा निशान भी था। अब चोरी पकड़ी गई। यह स्पष्ट था कि किसी ने मेरे बिस्तर का सामान अपने बिस्तर में डाल लिया है और मेरा बिलकुल नया होल्डाल ले उड़ा है। परन्तु मैंने भी खूब चोरी पकड़ी। कण्डक्टर को आवाज़ देकर मैंने छत पर बुलाया। वह बड़बड़ाता हुआ आया और बोला, "बाबूजी, क्या बात है? आप लोग ख़ाह-मख़ाह की देर कर रहे हैं।"

"मेरा बिस्तर चोरी गया है और उसका सामान इस बिस्तर में है।"

कण्डक्टर ने बिस्तर खोला। उसमें सब मेरा सामान था। यह क्या? मैं हैरान भी हुआ और लज्जित भी। परन्तु मेरा भी क्या दोष था? बिस्तर की शकल तेल का टिन उलटने से एकदम बदल गई थी और भूतपूर्व नायब तहसीलदार और वर्तमान कोयले के व्यापारी के कोयलों ने उसकी आकृति को और भी बदल दिया था। अन्य व्यक्तियों ने अपना-अपना सामान जमाने के लिए उसे बार-बार सरकाया और फाड़ डाला। कण्डक्टर ने मेरी ओर ऐसे देखा जैसे मैंने खून कर दिया हो। दण्ड देने के विचार से उसने घण्टी के बजाय चिल्लाकर कहा, "चलो।" लेकिन दूसरे ही क्षण न जाने उसे मुझ पर क्यों दया आ गई। बोला, "रोककर।"

इस प्रकार हर दस-पन्द्रह मिनट बाद रुकती-रुकती बस अपनी

मञ्जिल पर पहुँची। उसके रुकते ही, ड्राइवर और कण्डक्टर उतरकर एक क्षण में अदृश्य हो गए। अब इनकी ज़िम्मेदारी समाप्त हो गई थी और उनकी जगह क़ुलियों की एक सेना ने ले ली थी। कुछ क़ुली बस की छत पर चढ़ गए और सामान को नीचे फेंकने लगे। दूसरे उस सामान को दबोचने लगे। ऐसे लगता था कि कोई क़ानून नहीं, कोई प्रबन्ध नहीं। एक अजीब शोर मचा था, जैसे प्रलय आने को हो।

परन्तु मेरा सामान ? मैं घबराकर बाहर की ओर भागा। वह गिरा मेरा बिस्तर, वह रहा ट्रंक। अटैची केस ? कहीं नज़र ही नहीं आ रहा था। मैंने बस का चक्कर काटा। वह रहा बाईं ओर। फिर दूसरा चक्कर, फिर पूरा उलटा चक्कर। परन्तु ट्रंक कहाँ गया ? मैंने क़ुलियों से पूछा। वे क्या जानें ? सवारियों से पूछा। उन्हें क्या पता ? तमाशबीनों से पूछा। कोई उत्तर नहीं मिला। किससे पूछूँ ? न ड्राइवर का पता न कण्डक्टर का। सहसा मुझे छड़ी और छतरी का ध्यान आया जो अभी-अभी गाड़ी के अन्दर पड़ी थीं। घबराया हुआ फिर बस के अन्दर गया, परन्तु वे दोनों भी गायब थीं। कहूँ तो किससे कहूँ ? हाथ जेब के टिकट पर जा पड़ा। उसे निकालकर पढ़ा। लिखा था—"सामान की ज़िम्मेदारी सवारी की है।"

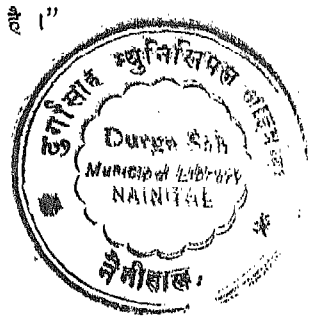

'इंटरव्यू', 'बाबूलाल' और 'परिवर्तन' कहानियाँ सम्पादक 'सरिता' के सौजन्य से उद्धृत की गई हैं—लेखक।